ॐ

परमात्मने नमः

श्री जैन सिद्धान्त प्रवेशिका

(नवीन सम्पादित संस्करण)

लेखक :
गुरुवर्य पण्डित गोपालदास बरैया

प्रकाशन सहयोग :
श्रीमती पुष्पलता जैन (जीजीबाई)
धर्मपत्नी श्री अजितकुमार जैन
गोलगंज, छिन्दवाड़ा (मध्यप्रदेश)

प्रकाशक

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट
सासनी-204216, हाथरस (उत्तरप्रदेश) भारत

सम्पादन : **राकेश जैन शास्त्री, अलीगढ़**
पुनरीक्षण : **पवन जैन, अलीगढ़**

प्रथम तीन संस्करण : **५०००** प्रतियाँ
चतुर्थ संस्करण : **१००० प्रतियाँ**
(*तीर्थधाम मङ्गलायतन* में आयोजित आध्यात्मिक शिक्षण शिविर के अवसर पर अक्टूबर 2011)

ISBN NO. : 81-901972-8-2
न्योछावर राशि : **पच्चीस रुपये मात्र**

प्राप्तिस्थान / **Available At -**

— **TEERTHDHAM MANGALAYATAN,**
Aligarh-Agra Road, Sasni-204216, Hathras (U.P.)
Website : www.mangalayatan.com; e-mail : info@mangalayatan.com

— **Pandit Todarmal Smarak Bhawan,**
A-4, Bapu Nagar, Jaipur-302015 (Raj.)

— **SHRI HITEN A. SHETH,**
Shree Kundkund-kahan Parmarthik Trust
302, Krishna-Kunj, Plot No. 30,
Navyug CHS Ltd., V.L. Mehta Marg,
Vile Parle (W), Mumbai - 400056
e-mail : vitragva@vsnl.com / shethhiten@rediffmail.com

— **Shri Kundkund Kahan Jain Sahitya Kendra,**
Songarh (Guj.)

टाइप सेटिंग :
मङ्गलायतन ग्राफिक्स, अलीगढ़

मुद्रक :
देशना कम्प्यूटर, जयपुर

प्रकाशकीय

(चतुर्थ संस्करण)

तीर्थधाम मङ्गलायतन ने **पण्डित श्री गोपालदास वरैया** द्वारा विरचित **श्री जैन सिद्धान्त प्रवेशिका** का **डॉ. किरीटभाई गोसलिया,** फिनिक्स, अमेरिका द्वारा प्रस्तुत अंग्रेजी संस्करण **PRIMER OF JAIN PRINCIPLES** अगस्त २००३ में प्रकाशित किया था, उसको मिले प्रतिसाद से प्रभावित होकर ***तीर्थधाम मङ्गलायतन*** ने इसके नवीन सम्पादित हिन्दी संस्करण को प्रकाशित करने का निर्णय लिया, जिसके अब तक तीन संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं और पाठकों की माँग को दृष्टिगोचर रखते हुए चतुर्थ संस्करण प्रकाशित करते हुए हमें अत्यन्त प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है।

पिछले बहुत समय से **श्री जैन सिद्धान्त प्रवेशिका** के प्रकाशन की आवश्यकता महसूस हो रही थी। यद्यपि कुछेक वर्षों पूर्व सन् १९८८ में इसे प्रकाशित करने का बीड़ा श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ ने उठाया और इसके दो संस्करण जल्दी-जल्दी प्रकाशित भी किये गये। उसी शृङ्खला में ***तीर्थधाम मङ्गलायतन*** ने इसका **नव-सम्पादित संस्करण** प्रकाशित किया है।

इस कृति एवं कृतिकार के सम्बन्ध में यदि वरिष्ठ विद्वान **स्व. डॉ. दरबारीलाल कोठिया, वाराणसी** के शब्दों में कहें तो —

''आचार्यकल्प पण्डित आशाधरजी, पण्डित राजमलजी और पण्डित टोडरमलजी आदि विद्वद्वरेण्यों ने जैन तत्त्वज्ञान की उपलब्धि और प्रसार के लिए जो कार्य किया, वही गुरु गोपालदासजी ने भी किया है। उनकी अद्भुत प्रतिभा, असाधारण निष्ठा और अद्वितीय चारित्र की त्रिवेणी, उनके पद-चिह्नों पर चलनेवालों के कल्मष को चिरकाल तक प्रक्षालन करती रहेगी।''[१]

स्व. गुरुवर्य पण्डित श्री गोपालदासजी वरैया के हम हृदय से आभारी हैं, जिन्होंने ऐसी अमूल्य रचना जैन जगत् को समर्पित की। इस कृति का मूल्याङ्कन,

१. गुरु गोपालदास वरैया स्मृति ग्रन्थ, पृष्ठ ३०२

इस बात से ही जाहिर होता है कि यह कृति भारत तथा विश्व के अनेक परीक्षाबोर्डों में भी मान्यता प्राप्त है। **हमारा ऐसा मानना है कि इस कृति को अच्छी तरह समझे बिना जिनागम को तथा पूज्य गुरुदेवश्री के प्रवचनों को समझना अत्यन्त कठिन है।**

लौकिकज्ञान के भी प्रत्येक क्षेत्र में अपने-अपने विषय के पारिभाषिक शब्दकोश होते हैं, जिनसे उन-उन विषयों में प्रवेश करना सरल हो जाता है। जिन-सिद्धान्त और जिन-अध्यात्म के क्षेत्र में भी ऐसी ही पारिभाषिक शब्दकोश की रचना अनिवार्य है, जिसकी पूर्ति लेखक ने की है। इसके एक-एक प्रश्न में जैन तत्त्वज्ञान का भरपूर खजाना भरा हुआ है और इसे जैनदर्शन का MINI ENCYCLOPEDIA (लघु पारिभाषिक शब्दकोश) भी कह सकते हैं। विशेष विद्वानों से निवेदन है कि इस कृति को आधार बनाकर जैनधर्म का वृहद् पारिभाषिक कोश भी तैयार करें।

मेरा यह सौभाग्य है कि मैंने इस सम्पादित कृति का अपने निजी स्वाध्याय हेतु पुनरीक्षण किया है। इसी प्रकार ***तीर्थधाम मङ्गलायतन*** पण्डित गोपालदासजी वरैया द्वारा रचित **श्री जैन सिद्धान्त दर्पण** को प्रकाशित कर रहा है। यह आठ अधिकारों में विभाजित है और इसमें द्रव्यानुयोग के साथ-साथ गोम्मटसार, लब्धिसार, क्षपणासार आदि ग्रन्थों के आधार पर करणानुयोग के विषय का भी विवेचन किया गया है। इसीप्रकार वरैयाजी के अनेक लेख भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और उपयोगी हैं। उन सभी का सङ्कलन करके प्रकाशन करना योग्य है।

प्रस्तुत ग्रन्थ के प्रकाशनकर्ता के रूप में **श्रीमती पुष्पालता जैन (जीजीबाई)** धर्मपत्नी **श्री अजितकुमार जैन, गोलगंज, छिन्दवाड़ा (म०प्र०)** के आर्थिक सहयोग के प्रति आभार व्यक्त करते हैं।

– पवन जैन
श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान
दिगम्बर जैन ट्रस्ट, अलीगढ़

ॐ

तीर्थधाम मङ्गलायतन

(संक्षिप्त परिचय)

शाश्वत शरण तुम्हारा हो, फिर चाहे जगत किनारा हो।
भव-भव में तुझ दास रहूँ, बस तू आदर्श हमारा हो॥

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी, तद्भक्त बहनश्री चम्पाबेनसहित समस्त ज्ञानी-महात्माओं के पुण्य प्रभावनायोग और विश्वभर के समस्त साधर्मी बन्धुओं के सहयोग से निर्मित ***तीर्थधाम मङ्गलायतन***, सत्य के साधकों की साधनाभूमि है। यह किसी व्यक्ति विशेष का नहीं है, यह तो जन-जन का है। यह जन-जन को वीतरागता का सन्देश देने के लिए कटिबद्ध है। यह अहिंसा के सन्देश को विश्व के कोने-कोने तक पहुँचाएगा। यह सत्यवाणी को, पूज्य गुरुदेवश्री की वाणी को जन-जन तक पहुँचाएगा। यह जैनधर्म के विलुप्त हो रहे गौरव को पुनर्स्थापित करेगा। यह जन-जन को सत्य, अहिंसा, अचौर्य, सदाचार, श्रावकाचार, अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य का पाठ पढ़ाएगा।

मङ्गलायतन, प्रेम का, मित्रता का, विकास का, शान्ति का और वीतरागता का सन्देश देगा। यह सुख-शान्ति देने में किसी प्रकार का भेदभाव नहीं करेगा। यह अपने उपासकों के लिए भी मङ्गलरूप होगा और निन्दकों के लिए भी मङ्गलरूप ही होगा। जो उसे देखकर हर्ष प्रकट करेंगे, उनके लिए भी यह मङ्गलरूप मोक्षमार्ग प्रशस्त करेगा और जो उसे देखकर रोष करेंगे, उन्हें भी यह सन्मार्ग पर लाने का प्रयास करेगा।

तीर्थधाम मङ्गलायतन का निर्माण श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, अलीगढ़ द्वारा हुआ है। इस ट्रस्ट की स्थापना १७ जुलाई २००० को हुई थी। इस संकुल का नामकरण, पञ्च परमागमों के

गुजराती अनुवादक स्वर्गीय पण्डित हिम्मतलाल जेठालाल शाह ने ०८ अगस्त २००० को स्वर्णपुरी-सोनगढ़ में किया था।

तीर्थधाम मङ्गलायतन का शिलान्यास २७ दिसम्बर २००० को तत्कालीन केन्द्रीय मानव संसाधन मन्त्री माननीय डॉ० मुरलीमनोहर जोशी एवं उत्तरप्रदेश के तत्कालीन मुख्यमन्त्री माननीय श्री राजनाथसिंह की उपस्थिति में लगभग १० हजार साधर्मी भाई-बहिनों ने किया था तथा मात्र २५ माह की अल्पावधि में यह तीर्थधाम पूर्णता को प्राप्त हुआ - यह सर्वत्र आश्चर्य का विषय आज भी है।

तीर्थधाम मङ्गलायतन की प्रतिष्ठाविधि, ०६ फरबरी २००३ को श्रीमहावीरस्वामी दिगम्बर जिनबिम्ब पञ्च कल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव के माध्यम से सम्पन्न हुई। जबकि उसका उद्घाटन देश-विदेश से पधारे हजारों साधर्मी भाई-बहिनों एवं विद्वानों की उपस्थिति में भारत के तत्कालीन उपप्रधानमन्त्री माननीय श्री लालकृष्ण अडवाणी ने किया था।

तीर्थधाम मङ्गलायतन, आज एक जाना-पहचाना विश्वविश्रुत तीर्थ बन चुका है। ८० हजार वर्गगज के विशाल भूखण्ड पर निर्मित **तीर्थधाम मङ्गलायतन** में कृत्रिम कैलाशपर्वत पर निर्मित भगवान श्री आदिनाथस्वामी जिनालय, भगवान श्री आदिनाथ मानस्तम्भ, भगवान श्री महावीरस्वामी जिनालय एवं भगवान श्री बाहुबलीस्वामी जिनालय के अतिरिक्त पण्डित दौलतराम जिनवाणी मन्दिर, आचार्य समन्तभद्र आत्मचिन्तनकेन्द्र, भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन, धन्य मुनिदशा (मुनिवन), सत्साहित्य विक्रयकेन्द्र, भगवान महावीरस्वामी धर्मार्थ औषधालय (नवीन भवन), विजयलक्ष्मी भोजनशाला, चैतन्य बसेरा एवं मङ्गल बसदि नामक अतिथिनिवास का निर्माण हो चुका है। आगामी चरण में आचार्य कुन्दकुन्द शोधसंस्थान, मङ्गल आवास, मङ्गल जलाशय, मङ्गल छत्रछाया, कहाननगर, आचार्य कुन्दकुन्द जीवनगाथा मन्दिर आदि मङ्गल आयतनों का निर्माण प्रस्तावित है।

तीर्थधाम मङ्गलायतन में प्रवेश करते ही मुख्यद्वार की बायीं ओर सम्पूर्ण विश्व में पहली बार **धन्य मुनिदशा प्रकल्प** (मुनिवन) की कृत्रिम

रचना की गई है, इसमें आपको चलते-फिरते सिद्धों के समान नग्न दिगम्बर जैन साधु के साक्षात् दर्शन होंगे। इस **धन्य मुनिदशा प्रकल्प** में -

★ कैसे कोई व्यक्ति वैराग्य पाकर मुनि बनने की भावना करता है?

★ कैसे वह माता-पिता से आज्ञा प्राप्त करता है?

★ कैसे वह दीक्षा-प्रदायक आचार्य के समीप जाकर दीक्षा की प्रार्थनापूर्वक दीक्षा अङ्गीकार करता है?

★ कैसे वह निर्विकल्प ध्यान करने हेतु सामायिक करता है?

★ कैसे वह छेदोपस्थापना चारित्र के अन्तर्गत २८ मूलगुणों को ग्रहण करता है?

★ कैसे वह दिन में एक बार खड़े-खड़े अपने करपात्र (हाथों) पर ही रखकर अल्पाहार करता है?

★ कैसे वह जनसमुदाय को उपदेश देकर सम्बोधित करता है?

★ कैसे वह मुनिराज कल्याणकारी शास्त्ररचना करता है?

★ कैसे वह उपसर्ग-परीषहों को समताभाव से सहन करता है?

★ कैसे वह समाधिपूर्वक सल्लेखना-मरण स्वीकार करता है?

★ कैसे मुनिराज क्षपकश्रेणी पर आरोहण करते हैं?

★ कैसे मुनिराज अविनाशी केवलज्ञान प्राप्त करते हैं?

★ कैसे पदमानन्दमय सिद्धदशा की प्राप्ति करते हैं?

- इस प्रकार इस मुनिवन में मुनिदशा के जीवनचरित्र को साक्षात् आदमकद मूर्तियों के द्वारा दर्शाया गया है। यहाँ 'लाइट एण्ड साउण्ड' के माध्यम से प्रत्येक दृश्य का सम्पूर्ण वृतान्त भी बताया जाता है।

तीर्थधाम मङ्गलायतन में पाषाणनिर्मित जिनायतनों के साथ-साथ, जीवन्त मन्दिरों के निर्माण की प्रक्रिया भी **भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन** के माध्यम से मूर्तरूप ले रही है। सम्यग्दर्शननिलय, सम्यग्ज्ञाननिलय और सम्यक्चारित्रनिलय के नाम से निर्मित भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन के **रत्नत्रयनिलय** में, छात्रों को उच्चस्तरीय लौकिक शिक्षा के साथ-साथ धार्मिक शिक्षा भी दी जाती है। हमारा उद्देश्य स्वस्थ,

स्वावलम्बी, चारित्रवान एवं संस्कारी युवक तैयार करना है, जो निस्वार्थभाव से आत्मकल्याण के साथ-साथ वीतराग धर्म का प्रचार-प्रसार कर सकें।

तीर्थधाम मङ्गलायतन द्वारा सितम्बर २००१ से '***मङ्गलायतन***' नामक मासिक पत्रिका का निरन्तर प्रकाशन किया जा रहा है। वर्तमान में विशेषाङ्कों की विशेष शृङ्खला प्रारम्भ करके '***मङ्गलायतन***' पत्रिका के प्रत्येक अङ्क को साधर्मियों के द्वारा सङ्कलन योग्य अविस्मरणीय स्वरूप प्रदान किया गया है।

तीर्थधाम मङ्गलायतन के **आचार्य समन्तभद्र आत्मचिन्तन केन्द्र** के दोनों कक्षों के बीच में एक विशाल कक्ष में 'स्ट्राँग रूम' बनाकर **पाण्डुलिपि संरक्षण केन्द्र** स्थापित किया गया है; इसमें सैकड़ों-हजारों वर्ष प्राचीन ताड़पत्र एवं कागज के हस्तलिखित जैन शास्त्रों का संग्रह एवं संरक्षण किया जाता है। इसके अन्तर्गत विशेष आधुनिक विधियों से मूल हस्तलिखित ग्रन्थों की पाण्डुलिपियों की साफ-सफाई, रासायनिक विधि से संरक्षण, डिजिटल कैमरों के द्वारा उनकी कॉपियाँ तैयार करना, उनका सूचीकरण करना आदि शामिल है।

तीर्थधाम मङ्गलायतन एवं **श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट, भावनगर** के संयुक्त तत्त्वावधान में यह संरक्षण केन्द्र सञ्चालित है। इस केन्द्र को **भारत सरकार** के **राष्ट्रीय पाण्डुलिपि मिशन** एवं **आरकाईव्ज़** की ओर से मान्यता भी प्राप्त है। अब तक हम ३२०० से अधिक पाण्डुलिपियों के लगभग ०६ लाख पृष्ठों को संरक्षित कर चुके हैं। इस केन्द्र के माध्यम से अनुपलब्ध प्रकाशित-अप्रकाशित ग्रन्थों का प्रकाशन भी किया जा रहा है।

अत्यन्त प्राचीन चित्रकला को सुरक्षित करने के उद्देश्य से लगभग १५०० दुर्लभ चित्रों का संरक्षण भी किया जा चुका है। इन्हें अत्यन्त सुन्दर प्रदर्शनियों के माध्यम से पञ्च कल्याणकों आदि विशेष अवसरों पर प्रदर्शित भी किया जाता है।

तीर्थधाम मङ्गलायतन में आचार्यों और ज्ञानीजनों द्वारा रचित तथा चार अनुयोगों के रूप में प्रकाशित-अप्रकाशित, हस्तलिखित एवं ताड़पत्रों

पर अङ्कित जिनवाणी की स्थापना के सम्यक् ध्येय से **कविवर पण्डित दौलतराम जिनवाणी मन्दिर** का निर्माण किया गया है।

तीर्थधाम मङ्गलायतन ने पञ्च परमागमों के हिन्दी पद्यानुवाद की सङ्गीतमयी प्रस्तुति, प्राचीन कवियों के भजन, देवभक्ति-गुरुभक्ति-जिनवाणीभक्ति, मङ्गल कथाओं, मङ्गल बोधिकथाओं की मधुर भक्तिरस से ओतप्रोत सी०डी०, वी०सी०डी०, डी०वी०डी० एवं ऑडियो कैसेट तैयार किये हैं।

तीर्थधाम मङ्गलायतन की ओर से **साधना चैनल** पर भी प्रतिदिन आधे घण्टे तक प्रवचन, सांस्कृतिक कार्यक्रम, ***मङ्गलायतन*** की वीडियो फिल्म आदि का प्रसारण होता है।

तीर्थधाम मङ्गलायतन की चारों दिशाओं में उत्तरप्रदेश सरकार ने तीन किलोमीटर क्षेत्र को शामिल कर, **विशेष क्षेत्र विकास प्राधिकरण** (Special Area Development Authority - 'SADA') के गठन की घोषणा की है। इसके गठन से ***तीर्थधाम मङ्गलायतन*** का चतुर्मुखी समग्र विकास सुनिश्चित है। विशेष क्षेत्र विकास प्राधिकरण ने विधिवत् गठन के बाद इस क्षेत्र में माँस-मदिरा की बिक्री व अवांछनीय निर्माण आदि पर स्वत: ही रोक लग जायेगी।

सम्पूर्ण विश्व में पहली बार जैन समाज को यह सौभाग्य प्राप्त हुआ है कि सम्पूर्ण दिगम्बर जैन मुमुक्षु समाज के सहयोग से अलीगढ़ में '***मङ्गलायतन विश्वविद्यालय***' का सञ्चालन किया जा रहा है, यह अत्यन्त सम्मान की बात है कि इस विश्वविद्यालय का नाम ***तीर्थधाम मङ्गलायतन*** के नाम से ही रखा गया है - यह विश्वविद्यालय पृथक् संस्थान द्वारा सञ्चालित किया जा रहा है।

मङ्गलायतन विश्वविद्यालय की स्वीकृति उत्तरप्रदेश सरकार के द्वारा माननीय राज्यपाल महोदय से हस्ताक्षरित होकर ३० अक्टूबर २००६ को '***मङ्गलायतन विश्वविद्यालय*** एक्ट' पारित करके एवं स्वयं सरकार द्वारा 'गजट' प्रकाशित करके प्रदान की जा चुकी है, इसी वर्ष जुलाई, २००७

से यह विश्वविद्यालय अपना कार्य प्रारम्भ कर देगा। इस विश्वविद्यालय में शताधिक विषयों पर डिग्री-डिप्लोमा कोर्स का अध्ययन कराया जाएगा। एतदर्थ २.५ लाख वर्गफुट का निर्माणकार्य चार चरणों में पूरा किया जाएगा। विश्व के सुप्रसिद्ध इंजीनियरों के सहयोग से निर्मित यह विश्वविद्यालय सम्पूर्ण विश्व में आकर्षण का केन्द्र होगा, विश्व की अनुपम कलाकृति होगी।

नैतिक, धार्मिक एवं आध्यात्मिक मानदण्डों पर भी यह विश्वविद्यालय कीर्तिमान स्थापित करेगा। लौकिक शिक्षा के क्षेत्र में भी जैन तत्त्वज्ञानप्रधान शिक्षा को महत्त्व प्रदान किया जाएगा। इस संस्थान का अल्पसंख्यक स्वरूप भी जैनधर्म एवं जैनसमाज के लिए अवश्य ही लाभदायी होगा, जिसके अन्तर्गत जैन छात्रों एवं निर्धन छात्रों के लिए विशेष प्रावधान होंगे।

तीर्थधाम मङ्गलायतन द्वारा सञ्चालित अनेकानेक परोपकारी योजनाओं में अथवा तीर्थधाम के सम्यक् सञ्चालन, निर्माण, रख-रखाव के लिये आपके सहयोग की आवश्यकता है। आप अपनी भावनानुसार कोई भी राशि दान में दे सकते हैं। आपसे अनुरोध है कि **तीर्थधाम मङ्गलायतन** के पुनः पुनः दर्शन करने हेतु अवश्य पधारें।

- पण्डित अशोक लुहाड़िया शास्त्री
तीर्थधाम मङ्गलायतन, अलीगढ़

II Om Namah II

A MESSAGE TO ALL READERS

We owe our respect and reverence to Dr. Kirit Gosalia. First, he studied, taught himself, and developed a great personal faith in the principles of Jainsim. Then, and only then, did he devote the long hours of personal dedication necessary to translate this great work into English, so that the many of us who can not read the original language might learn and gain eternal bliss. **One's spiritual awakening is the most essential event in one's life – perhaps, the sole purpose for being.**

This writer was privileged to read each draft of the English translation; to comment on the original manuscript; and, to suggest changes. Readers who are already familiar with the philosophy of Jainism and who are aware of its exceptional depth of thought and scholarship understand the need for careful, **concentrated study to master its tenets and to further achieve their own personal state of enlightenment.**

As one who has devoted his life to teaching, it is to the English speaking reader, and especially to those students who desire to learn the principles of Jainism, to whom these thoughts are addressed. My fellow readers, this is a work which requires much self-discipline and intense concentration to understand how to apply its tenets to your own lives. It is not a work to be read quickly nor to be taken lightly – it is to be savored, thougth about, discussed, and savored anew. **Young readers must be prepared to be patient, to seek wisdom, to ask questions of thier own, and, yes, at times to avoid frustration and to perservere. Remember, to bring your own faith in Jainism to fruition requires a life-long endeavor.**

Now, as you approach this work, be prepared to put yourself into the role of asking each of the several hundred questions and then to listening and absorbing the answers given to each. Before you begin this remarkable task, I urge you first to study Dr. Gosalia's orientation to this translation. As one who has both

studied and taught world religions, I assure you that his introductory orientation and his translation will provide each reader with a faithful, comprehensive insight into the philosophy of Jainism. **I also urge each reader to use the tables at the end of this work as a significant means for reviewing the principles of Jainism.**

Your most honoured servant,
Melvin W. Donaho, Ph. D.

SHRI JAIN SIDDHANT PRAVESHIKA

(AN ENGLISH VERSION)

Shri Jain Siddhant Praveshika is written in such a readable style that anyone should be able to understand the basic Jain principles. Since I was able to significantly further my own knowledge about Jainism through this book, I was motivated to attempt an English translation of this work. It is hoped that a translation will be an invaluable tool for the English-speaking children of the western world and India, who are studying Jainism. Initially the scope of the work overwhelmed me; however I was ecnouraged by friends to pursue the project.

In fact, at the completion of the translation, my personal belief in the principles of Jainism was further enhanced. For a beginning student, this English translation will provide a much clearer vision of the fundamentals of Jainism. The utmost care has been taken in this translation to maintain the intergrity of the original text. In a very few places, I have taken the liberty to expand the text of convey in English, the true intention of Baraiyaji.

– Kirit Gosalia, M.D.

Phoenix, Arizona, U.S.A. Email : digjain@aol.com

(From Primer of Jain Principles, Page V)

प्रस्तावना

वीतराग-सर्वज्ञ परमात्मा की सर्वाङ्ग से निःसृत ॐकारमयी दिव्यध्वनि को सुनकर सम्पूर्ण श्रुतज्ञान के धारक गणधरदेव द्वादशाङ्ग की रचना करते हैं। इन द्वादशाङ्ग के पदों की संख्या के विवरण को देखकर ज्ञात होता है कि यह द्वादशाङ्ग अत्यन्त विपुल प्रमाण में रचित होता है।

वर्तमान उपलब्ध जिनागम एक विशिष्ट शैली 'चार अनुयोग' में निबद्ध है – प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग और द्रव्यानुयोग। इन चारों अनुयोगों में जैनदर्शन-सम्मत सैद्धान्तिक शब्दों का विपुलता से प्रयोग हुआ है। इन सैद्धान्तिक शब्दों की परिभाषाएँ भी जिनागम में यत्र-तत्र उपलब्ध हैं, परन्तु इन सभी सैद्धान्तिक शब्दों को एक जगह एकत्रित करके उनका उचित क्रम में सङ्कलन करना, अपने आप में एक महान श्रमसाध्य काम है।

आज से लगभग ७०-८० वर्ष पूर्व इस युग के प्रकाण्ड विद्वान **गुरुनां गुरु, स्वनामधन्य, गुरुवर्य पण्डित श्री गोपालदासजी वरैया** ने इस काम का बीड़ा उठाया और अपनी सङ्कल्प शक्ति के बल पर यह **श्री जैन सिद्धान्त प्रवेशिका** तैयार की।

ग्रन्थकार : संक्षिप्त जीवनवृत्त

गुरुवर्य श्री पण्डित गोपालदास वरैया, उन गौरवशाली व्यक्तित्वों में है, जिनका वृहद्काय अभिनन्दन ग्रन्थ (६२८ + ४४ = ६७२ पृष्ठ) उनके मरणोपरान्त ५० वर्ष बाद अर्थात् आज से ३७ वर्ष पूर्व सन् १९६७ में प्रकाशित किया गया था। उसके आधार पर उनका संक्षिप्त जीवनवृत्त यहाँ दिया जा रहा है।

भारत के इतिहास में अनेक महापुरुष अवतरित हुए हैं, जिन्होंने जनसामान्य के मन-मस्तिष्क पर अपने उज्ज्वल चरित्र और आदर्श जीवन की अमिट छाप छोड़ी है। पण्डित श्री गोपालदासजी वरैया उन्हीं में से एक हैं; उनके

बलिदान, त्याग और सेवाओं की लम्बी फेहरिस्त (सूची) है, जो देश और समाज के प्रति उनके उल्लेखनीय योगदान की गवाही देती है। यही कारण है कि जैन समाज को आज भी उन पर नाज है, गौरव है।

बालक गोपालदास का जन्म भारतदेश के उत्तरप्रदेश प्रान्त के आगरा शहर में सन् १८६७ अर्थात् वि.सं. १९२३, चैत्र कृष्ण द्वादशी के दिन, वरैया जातिज और एछिया गोत्रज लाला लक्ष्मणदास जैन के परिवार में हुआ था। राजस्थान के अजमेर शहर में उनका परिचय एक जैन सद्गृहस्थ, स्वाध्यायी श्री मोहनलाल जैन की प्रेरणा से जैन साहित्य से हुआ; तभी से उनके जीवन में एक बड़ा परिवर्तन हुआ और उनकी जैनधर्म के प्रति आस्था वृद्धिङ्गत होती गयी।

आपने अपनी अप्रतिम प्रतिभा के बल पर, बिना गुरुगम के जैनदर्शन के अनेकों ग्रन्थों का अध्ययन, और उनके रहस्यों को हृदयङ्गम किया। यद्यपि पञ्चाध्यायी आदि कुछ ग्रन्थों को पढ़ने में उन्होंने पण्डित श्री बलदेवदास, आगरा का सहयोग लिया था, तथापि अधिकांश ग्रन्थों का अध्ययन उन्होंने स्वयमेव किया।

संस्कृत एवं अर्द्धमागधी भाषा के प्रति उपेक्षाभाव देखकर उन्हें अत्यन्त पीड़ा का अनुभव हुआ और उन्होंने मुरैना (मध्यप्रदेश) में एक **जैन संस्कृत विद्यालय** की स्थापना की। उसके माध्यम से उनकी शिष्य परम्परा में अनेक उच्चकोटि के विद्वान् तैयार हुए हैं; जिनमें से कुछ नाम निम्न हैं —

श्रीयुत क्षुल्लक गणेशप्रसादजी वर्णी, श्री नाथूराम प्रेमी, पण्डित फूलचन्द सिद्धान्तशास्त्री, पण्डित जगन्मोहनलाल शास्त्री, पण्डित कैलाशचन्द सिद्धान्तशास्त्री, पण्डित पन्नालाल साहित्याचार्य, डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री ज्योतिषाचार्य, पण्डित माणिकचन्द कौन्देय, पण्डित मक्खनलाल शास्त्री, पण्डित देवकीनन्दन सिद्धान्तशास्त्री, पण्डित वर्धमान शास्त्री, पण्डित बंशीधर व्याकरणाचार्य, पण्डित मुन्नालाल रांधेलीय, डॉ. हुकुमचन्द भारिल्ल, पण्डित रतनचन्द भारिल्ल आदि।

डॉ. हुकुमचन्द भारिल्ल द्वारा निर्देशित और पण्डित रतनचन्द भारिल्ल के प्राचार्यत्व में सञ्चालित **श्री टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धान्त महाविद्यालय, तीर्थधाम मङ्गलायतन** में सञ्चालित **भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन** और बाँसवाड़ा में सञ्चालित **श्री अकलङ्कदेव शिक्षण संस्थान** भी इसी शृङ्खला की कड़ियाँ हैं। जहाँ से सैकड़ों की संख्या में विद्वान् तैयार हो रहे हैं और हजारों की संख्या में निकट भविष्य में तैयार होंगे।

जैन साहित्य के अध्ययन हेतु उन्होंने **श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन परीक्षालय** की स्थापना भी की और निःस्वार्थ भावना से उन्होंने शिक्षा, साहित्य और सांस्कृतिक चेतना को जागृत करने में अपनी महती भूमिका अदा की। उन्होंने खुले दिल से जैनधर्म और दर्शन की प्रभावना हेतु देशभर में स्वाध्याय की प्रवृत्ति चलाकर प्रचार-प्रसार किया।

उनकी बुद्धिमत्ता और धर्म के प्रति रुझान को देखकर जैन समाज ने उन्हें अनेक उपाधियों से सम्मानित किया। जैसे - स्याद्वादवारिधि, वादीगजकेसरी, न्यायवाचस्पति आदि। जीवन में आपने अनेक आर्यसमाजी तथा अन्य विद्वानों को शास्त्रार्थ में परास्त किया। श्री गोपालदासजी ने अपने साहित्यिक जीवन की शुरुआत **जैनमित्र** नामक पाक्षिक पत्रिका से की, जो आज भी भारत में गुजरात के सूरत नामक शहर से प्रकाशित होती है।

पण्डित गोपालदासजी ने जैनदर्शन के सैद्धान्तिक विषयों को समाहित करते हुए अनेक रचनायें लिखी, इनमें भी उन्होंने अनेक सैद्धान्तिक विषयों का समावेश अत्यन्त सहज, सरल शैली में किया। उनकी प्रमुख पुस्तकों में **श्री जैन सिद्धान्त प्रवेशिका** और **श्री जैन सिद्धान्त दर्पण** हैं। आपने बहुचर्चित **सुशीला उपन्यास** भी तत्कालीन नवयुवकों में चेतना जागृत करने के उद्देश्य से लिखा था, जो कि धर्मविमुख हो रहे थे।

इनके अलावा भी आपके द्वारा लिखित कुछ लेख हैं। जैसे - जैन ज्योग्राफी (Jain Geography), जैन सिद्धान्त (Jain Philosophy)

सार्वधर्म, उन्नति, आत्महित (भाषण), सृष्टिकर्तृत्वमीमांसा आदि। इस प्रकार उनकी सर्वतोमुखी सफलता का मूलश्रेय उनकी नि:स्वार्थ सेवाभावना को ही जाता है।

उन्होंने मुरैना स्थित संस्कृत विद्यालय के जरूरतमन्द छात्रों को छात्रवृत्ति प्रदानकर समाजसेवा के क्षेत्र में अपना अमूल्य योगदान दिया। उन्होंने कभी भी अपने लौकिक स्वार्थ के लिए धार्मिक कार्य नहीं किये। धार्मिक दृष्टि से भी आप उज्ज्वल चरित्र के धारक थे, पञ्चाणुव्रतों का पालन दृढ़ता से करते थे।

आपने अपना सम्पूर्ण जीवन प्राणीमात्र के हित के लिए व्यतीत किया और व्यापार के क्षेत्र में भी उन्होंने पूर्ण ईमानदारी का परिचय दिया। एक बार जब मुरैना के बाजार में आग लग गयी तो दूसरे व्यापारियों की तरह उन्हें भी बड़ा आर्थिक नुकसान हुआ। सबके व्यापार का बीमा था। यद्यपि अनेक व्यापारियों ने बीमा कम्पनी से अपने माल से बहुत ज्यादा राशि वसूल की, तथापि गोपालदासजी ने मात्र अपने नुकसान की रकम को ही बीमा कम्पनी के सामने प्रस्तुत किया।

पण्डित गोपालदासजी अपने जीवन में छोटी-छोटी बातों पर भी ध्यान देते थे। एक बार उनकी पत्नी ने उनको बिना बताये विद्यालय के बढ़ई से अपने बच्चों के लिए कुछ खिलौने बनवा लिये, जिसे बनाने में उसे मात्र दो घण्टे का समय लगा। जब गोपालदासजी को यह पता चला तो वे काफी नाराज हुए और उतने काम की राशि विद्यालय के खाते में जमा कराई। जब अन्य लोगों ने उनसे पूछा कि आपने इतनी छोटी-सी राशि की चिन्ता क्यों की तो उन्होंने कहा कि **पाप का प्रारम्भ छोटे पाप से ही होता है, वही आगे जाकर बड़े पाप का रूप धारण करता है।**

ऐसी अनेक घटनायें उनके जीवन में घटित हुईं, जो उनके '**सादा जीवन, उच्च विचार**' की सूक्ति को चरितार्थ करती हैं। वे नित्य पूजन, स्वाध्याय आदि कर्म करते थे और अनेक सामाजिक समस्याओं का नि:स्वार्थभाव

से समाधान करते थे। उनके कार्य उनके उज्ज्वल विचारों के दर्पण थे। वे एक ईमानदार, धार्मिक और न्यायप्रिय व्यक्ति थे। उनका देहावसान मात्र ५१ वर्ष की अल्पायु में सन् १९१७ अर्थात् वि.सं. १९७३ चैत्र वदी पञ्चमी के दिन उनकी कर्मस्थली मुरैना में ही हुआ।[१]

पण्डित जगन्मोहनलाल सिद्धान्तशास्त्री, जो उनकी अन्तिम यात्रा के प्रत्यक्षदृष्टा थे, उन्होंने अपने संस्मरण में लिखा है कि —

''वे अपना अन्त समय जान चुके थे और उन्होंने अपने समाधिमरण की तैयारी उस समय स्वयं की थी और सर्व परिग्रह त्यागकर ही नग्नावस्था में समाधिपूर्वक प्राण विसर्जन किये थे।''[२]

उनके जीवनवृत्त से हमें उत्कृष्ट आध्यात्मिक जीवन के साथ-साथ उज्ज्वल लौकिक जीवन की शिक्षा ग्रहण करना चाहिए।

श्री जैन सिद्धान्त प्रवेशिका : संक्षिप्त परिचय

सर्वप्रथम गुरुवर्य स्वर्गीय श्री गोपालदास वरैया ने में '**श्री जैन सिद्धान्त दर्पण**' नामक एक स्वतन्त्र कृति की रचना की। यद्यपि यह उनकी सर्वप्रथम कृति है, तथापि इसमें उनकी अद्भुत प्रौढ़ता का परिचय मिलता है। इस कृति के सम्बन्ध में पण्डित फूलचन्दजी सिद्धान्तशास्त्री के विचार दृष्टव्य हैं —

''यद्यपि जैन सिद्धान्त का रहस्य प्रगट करनेवाले श्री कुन्दकुन्दाचार्य के समान महान आचार्यों के बनाये हुए बड़े-बड़े अनेक ग्रन्थ अब भी मौजूद हैं, पर उनका असली ज्ञान प्राप्त करना असम्भव नहीं तो दु:साध्य अवश्य है; इसलिए जिस तरह सुचतुर लोग जहाँ पर कि सूर्य का प्रकाश नहीं पहुँच सकता, वहाँ पर भी बड़े-बड़े चमकीले दर्पण आदि पदार्थों के द्वारा रोशनी पहुँचाकर अपना काम चलाते हैं; उसी तरह जटिल जैन

१. गुरु गोपालदास वरैया स्मृति-ग्रन्थ, पृष्ठ ७, १८, ४६
२. वही, पृष्ठ ५४

सिद्धान्तों के पूर्ण प्रकाश को किसी तरह इन जीवों के हृदय-मन्दिर में पहुँचाने के लिए 'जैन सिद्धान्त दर्पण' की आवश्यकता है।

शायद आपने ऐसे पहलदार दर्पण भी देखे होंगे, जिनके द्वारा उलट-फेरकर देखने से भिन्न-भिन्न पदार्थों का प्रतिभास होता है; उसी तरह इस 'जैन सिद्धान्त दर्पण' के भिन्न-भिन्न अधिकारों द्वारा सिद्धान्त विषयक भिन्न-भिन्न पदार्थों का ज्ञान प्राप्त किया जा सकेगा।''[१]

इसी प्रकार जिनागम में प्रवेश करने के उद्देश्य से उन्होंने बालावबोधिनी **श्री जैन सिद्धान्त प्रवेशिका** की भी रचना की। यद्यपि परवर्ती चिन्तकों को यह रचना भी विस्तृत जान पड़ी तो उन्होंने इसे आधार बनाकर **लघु जैन सिद्धान्त प्रवेशिका** की रचना की।

इसी प्रवेशिका के आधार पर वयोवृद्ध विद्वान् श्री रामजी मणिकचन्दजी दोशी ने सोनगढ़ में लगनेवाले आध्यात्मिक शिक्षण शिविरों को ध्यान में रखकर '**श्री जैन सिद्धान्त प्रश्नोत्तरमाला**' के तीन भागों की रचना की, इसी श्रृङ्खला में ***तीर्थधाम मङ्गलायतन*** के संस्थापक पण्डित श्री कैलाशचन्दजी जैन, अलीगढ़ ने सम्पूर्ण भारतवर्ष में अपनी विशिष्ट शैली में धार्मिक कक्षाओं का सञ्चालन अनवरतरूप से ३० वर्षों तक किया, उन्होंने भी '**जैन सिद्धान्त प्रवेश रत्नमाला**' के सात भाग एवं '**लघु जैन सिद्धान्त प्रवेश रत्नमाला**' की रचनाएँ कीं।

इन सभी प्रयोगों में जिस **प्रश्नोत्तर शैली** का प्रयोग किया गया, उसके सर्वप्रथम प्रयोगकर्ता पण्डित श्री गोपालदास वरैया ही हैं। इस सम्बन्ध में सिद्धान्ताचार्य स्व. कैलाशचन्द शास्त्री, बनारस के विचार अवलोकनीय हैं —

''इस कोष के निर्माण में गुरुजी ने जो विषयानुक्रम रखा है, वह इतना सुव्यवस्थित है कि एक प्रश्न को उपस्थित कर देने से उससे सम्बद्ध विषयों की प्रश्नोत्तरमाला बिना किसी उलझन के आगे बढ़ती जाती है

१. गुरु गोपालदास वरैया स्मृति-ग्रन्थ, पृष्ठ २८४

और अध्याय समाप्त हो जाता है।... संक्षेप में यह एक ऐसा जेबी कोश है, जो जैन सिद्धान्त के अभ्यासियों को सदा अपनी जेब में रखना चाहिए।''[१]

यह रचना ६७१ प्रश्नोत्तरों में निबद्ध है। इस रचना को पाँच प्रमुख अध्यायों में विभक्त किया गया है। यद्यपि उन्होंने अध्यायों का नामकरण नहीं किया है। लेकिन उन्होंने अध्यायों को उनकी विषयवस्तु के आधार पर ही विभाजित किया है; सम्पादक ने इन अध्यायों को द्रव्य-गुण-पर्याय, कर्म का स्वरूप, जीव की खोज, मुक्ति के सोपान और अधिगम के उपाय नामक शीर्षकों से उल्लिखित किया है —

प्रथम अध्याय : द्रव्य-गुण-पर्याय

इस अध्याय में द्रव्य-गुण-पर्याय का सामान्य स्वरूप, उनके भेद-प्रभेद आदि का विस्तार से वर्णन **प्रश्न क्रमाङ्क १ से १३४** तक कुल १३४ प्रश्नोंत्तरों के द्वारा किया गया है। इसके अन्तर्गत सामान्यगुण, विशेषगुण, पुद्गलस्कन्ध, पाँच शरीर, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य, लोक-अलोक, अस्तिकाय, अनुजीवी-प्रतिजीवी गुण, चार अभाव, श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र, ज्ञान-दर्शन-सुख-वीर्य आदि विषयों का भी यथासम्भव वर्णन किया है।

द्वितीय अध्याय : कर्म का स्वरूप

इस अध्याय में संसारी जीव के साथ सम्बद्ध कर्मों का स्वरूप, **प्रश्न क्रमाङ्क १३५ से ३४१** तक कुल २०७ प्रश्नोत्तरों के द्वारा किया गया है। इसके अन्तर्गत चार प्रकार के कर्मबन्ध, उनके भेद-प्रभेद, १४८ प्रकार की कर्म प्रकृतियाँ, जीवविपाकी आदि भेद, उनके प्रभेद, घाति-अघाति कर्म, सर्वघाति-देशघातिकर्म, पाप-पुण्यकर्म आदि; सागर, पल्य आदि कालकृत भेद; कर्मों की उदय, उदीरणा आदि अवस्थाएँ; निषेक, स्पर्द्धक, वर्ग, वर्गणा, अविभाग प्रतिच्छेद, समयप्रबद्ध, गुणहानि आदि जैन गणितीय विषय, आस्रव और उसके भेद, आस्रव के कारण — मिथ्यात्व-अविरति-प्रमाद-कषाय-

१. गुरु गोपालदास वरैया स्मृति-ग्रन्थ, पृष्ठ ३०३

योग तथा उनके द्वारा होनेवाला बन्ध, उपादान–निमित्तकारण आदि विषयों का वर्णन किया है।

तृतीय अध्याय : जीव की खोज

इस अध्याय में संसारी जीवों की खोज का वर्णन **प्रश्न क्रमाङ्क ३४२ से ४७१** तक १३० प्रश्नों द्वारा किया गया है। इसके अन्तर्गत जीव के असाधारण पाँच भाव, लेश्या, उपयोग, संज्ञा, चौदह मार्गणाओं, उनके भेद–प्रभेद, विग्रहगति, लिङ्ग, अनेक प्रकार के जीवसमास, उर्ध्वलोक, मध्यलोक, अधोलोक का वर्णन यथोचित विस्तार के साथ किया है।

चतुर्थ अध्याय : मुक्ति के सोपान

इस अध्याय में मुक्ति–प्राप्ति के चौदह सोपानों का वर्णन भूमिका बनाकर **प्रश्न क्रमाङ्क ४७२ से ५६०** तक ८९ प्रश्नोत्तरों के माध्यम से किया गया है। सर्वप्रथम गुणस्थानों का संक्षिप्त स्वरूप बताकर बाद में एक–एक गुणस्थान का अलग–अलग स्वरूप, उस गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों का बन्ध –उदय–सत्त्व पाया जाता है; इन सबका वर्णन करने के साथ–साथ यहाँ अनेक प्रासङ्गिक विषयों का भी खुलासा किया है। जैसे – व्युच्छित्ति, श्रेणी, त्रिकरण आदि का स्वरूप।

अध:करण का स्वरूप तो एक विस्तृत दृष्टान्त के द्वारा प्रदर्शित किया है। साथ ही यह निर्देश दिया है कि इसका विस्तार के साथ वर्णन गोम्मटसार तथा सुशीला उपन्यास के सोलहवें पर्व में देख सकते हैं।

पञ्चम अध्याय : अधिगम के उपाय

इस अध्याय में सम्यक्त्व–प्राप्ति के उपायभूत तत्त्वार्थों को जानने की विधि का वर्णन **प्रश्न क्रमाङ्क ५६१ से ६७१** तक १११ प्रश्नोत्तरों के द्वारा कराया गया है। पदार्थों को जानने के उपाय चार हैं – लक्षण, प्रमाण, नय और निक्षेप। इन सभी का और उनके भेद–प्रभेदों का वर्णन न्यायप्रधान शैली में

कराया गया है, क्योंकि जैनधर्म परीक्षाप्रधानी है। संक्षेपत: समस्त जैनन्याय का वर्णन इस अध्याय में हो जाता है।

यद्यपि इस अध्याय को मूलकृति में प्रथम अध्याय के रूप में रखा गया है, क्योंकि ये सर्व विषय जानने के उपाय हैं; तथापि 'द्रव्य–गुण–पर्याय' का महत्त्व देखते हुए उसे पहले और इस अध्याय को अन्तिम अध्याय के रूप में रखा गया है।

नवीन सम्पादित संस्करण का वैशिष्ट्य

पाठकों की सुविधा को ध्यान में रखते हुए इस नवीन सम्पादित संस्करण में अनेक संशोधन आदि किये गये हैं, जिनके सम्बन्ध में पाठकों को सूचित करना अनिवार्य है; अत: हमने क्या किया? इसकी संक्षिप्त जानकारी यहाँ प्रस्तुत की जाती है —

१. इस संस्करण में भाव को सुरक्षित रखते हुए भाषा का आधुनिकीकरण किया गया है, यही कारण है कि इसे सम्पादित संस्करण नाम दिया गया है। जैसे — **द्रव्य किसको कहते हैं?** के स्थान **'द्रव्य किसे कहते हैं ?'** आदि अनेक प्रकार से संशोधन किया गया है।

२. यद्यपि पूर्व प्रकाशित प्रतियों में **अध्यायों** तथा **प्रश्नों का क्रम** आगे–पीछे मिलता है, तथापि हमने सोनगढ़ से प्रकाशित क्रम को ही यथावत् रखा है।

३. प्रत्येक अध्याय का नामकरण करने के साथ–साथ प्रारम्भ में **दोहा** लिखा गया है, जो सम्पादक की अपनी रचना है।

४. अध्यायों के अन्तर्गत कुछ **शीर्षकों** एवं **उपशीर्षकों** का भी प्रयोग किया गया है। शीर्षकों में प्रथम संख्या, अध्याय के क्रमाङ्क की सूचक है; द्वितीय संख्या, शीर्षक के क्रमाङ्क की सूचक है तथा तृतीय संख्या, उपशीर्षक के क्रमाङ्क की सूचक है। जैसे — **२.१** अर्थात् द्वितीय अध्याय का पहला शीर्षक है। इसी प्रकार **१.८.३** अर्थात् प्रथम अध्याय के आठवें शीर्षक के अन्तर्गत तीसरा उपशीर्षक है। इसी प्रकार सर्वत्र जानना चाहिए।

५. अनेक प्रश्नोंत्तरों को आवश्यकता की दृष्टि से पाद-टिप्पणी में जोड़ा गया है। जैसे — **विश्व किसे कहते हैं, तैजस शरीर किसे कहते हैं ?** आदि। ध्यान रहे कि उक्त प्रश्न मूल में नहीं हैं।

६. अनेक स्थानों पर **विशेष टिप्पणियाँ** दी गई हैं। जैसे प्रश्न क्रमाङ्क ७४ में अन्योन्याभाव की एक अन्य परिभाषा दी गई है। इसीप्रकार अन्यत्र जानना चाहिए।

७. कुछ स्थानों पर प्राचीन मूल ग्रन्थों के आधार पर **परिभाषाओं में संशोधन** किया गया है। जैसे - प्रश्न क्रमाङ्क ९० में अवग्रह की परिभाषा का संशोधन न्यायदीपिका के आधार पर किया गया है।

८. कुछ स्थानों पर एक ही प्रश्न क्रमाङ्क में दो प्रश्न (अ) और (ब) के रूप में पूछे गये हैं; उन्हें (अ) और (ब) के रूप में विभाजित किया गया है। जैसे — प्रश्न क्रमाङ्क २१० (अ) और २१० (ब)।

संशोधन, सम्पादन आदि कार्य करते समय यदि कोई जाने-अनजाने भूल हो गयी हो तो सूचित करने का विनम्र निवेदन है, ताकि आगामी संस्करणों में **भूल-सुधार** किया जा सके। आशा है इस नवीन सम्पादित संस्करण का सदुपयोग करते हुए हम और आप आत्मकल्याण के पथ पर अग्रसर होंगे - यही भावना है।

— सम्पादक

डॉ. राकेश जैन

शास्त्री, जैनदर्शनाचार्य, पी. एच-डी.

मङ्गलायतन विश्वविद्यालय, बेसवाँ

विषय सूची

मङ्गलाचरण १

प्रथम अध्याय : द्रव्य-गुण-पर्याय (३-२५)

१.१ द्रव्य और गुण ३
१.२ द्रव्यों के भेद एवं स्वरूप ५
१.३ पर्याय ८
१.४ उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य १०
१.५ द्रव्यों के विशेषगुण १०
१.६ लोक और अलोक ११
१.७ अस्तिकाय १३
१.८ अनुजीवी और प्रतिजीवी गुण १४
१.८.१ चार अभाव १४
१.८.२ जीव के अनुजीवी गुण १५
१.८.३ जीव के प्रतिजीवी गुण १६
१.८.४ जीव के अनुजीवी गुणों का विस्तृत विवेचन १६
१.८.५ जीव के प्रतिजीवी गुणों का सामान्य विवेचन २५

द्वितीय अध्याय : कर्म का स्वरूप (२७-६८)

२.१ प्रकृतिबन्ध २८
२.२ स्थितिबनध ५०
२.३ अनुभागबन्ध ५२
२.४ प्रदेशबन्ध ५२
२.५ कर्मों की विभिन्न अवस्थाएँ ५२
२.६ आस्रव ५८

तृतीय अध्याय : जीव की खोज (६९-९३)

३.१ जीव के असाधारण पाँच भाव ६९
३.२ लेश्या और उसके भेद ७१
३.३ उपयोग और उसके भेद ७१
३.४ संज्ञा और उसके भेद ७१
३.५ मार्गणा और उसके भेद ७२

३.६	गतिमार्गणा और उसके भेद	७२
३.७	इन्द्रियमार्गणा और उसके भेद-प्रभेद	७२
३.८	कार्यमार्गणा और उसके भेद-प्रभेद	७५
३.९	योगमार्गणा और उसके भेद	७७
३.१०	वेदमार्गणा और उसके भेद	७८
३.११	कषायमार्गणा और उसके भेद	७८
३.१२	ज्ञानमार्गणा और उसके भेद	७९
३.१३	संयममार्गणा और उसके भेद	७९
३.१४	दर्शनमार्गणा और उसके भेद	७९
३.१५	लेश्यामार्गणा और उसके भेद	८०
३.१६	भव्यमार्गणा और उसके भेद	८०
३.१७	सम्यक्त्वमार्गणा और उसके भेद	८०
३.१८	संज्ञीमार्गणा और उसके भेद	८०
३.१९	आहारमार्गणा और उसके भेद	८१
३.२०	विग्रहगति और उसके भेद	८१
३.२१	जन्म और उसके भेद	८२
३.२२	लिङ्ग और उसके भेद	८३
३.२३	जीवसमास और भेद-प्रभेद	८३
३.२४	लोक और उसके विभाग	९०

चतुर्थ अध्याय : मुक्ति के सोपान **(९५-१२३)**

पञ्चम अध्याय : अधिगम के उपाय **(१२५-१४३)**

५.१	लक्षण और लक्षणाभास	१२५
५.२	प्रमाण और उसके भेद-प्रभेद	१२६
५.३	प्रमाण का विषय	१३७
५.४	प्रमाणाभास और उसके भेद	१३८
५.५	नय और उसके भेद-प्रभेद	१३९
५.६	निक्षेप और उसके भेद	१४२

ग्रन्थकर्त्ता का अन्तिम वक्तव्य **(१४४-१४६)**

लोकसम्बन्धी चित्र-संग्रह **(१४७-१५८)**

अकारादिक्रमानुसार विषयानुक्रमणिका **(१५९-१६८)**

गुरुवर्य पण्डित गोपालदास वरैया के सम्बन्ध में

विद्वानों द्वारा प्रदत्त उपाधियाँ

१. **विलक्षण प्रतिभा के धनी** — क्षुल्लक गणेशप्रसाद वर्णी
२. **अविस्मरणीय मेरे विद्यागुरु** — पण्डित बंशीधर शास्त्री
३. **गुरुणामपि गुरु (गुरुओं के गुरु)** — पण्डित जगन्मोहनलाल शास्त्री
४. **सुधारक शिरोमणि वरैयाजी** — डॉ. ज्योतिप्रसाद जैन
५. **अगाध पाण्डित्य के धनी** — पण्डित नाथूराम प्रेमी
६. **मङ्गलस्वरूप गुरुजी** — पण्डित फूलचन्द शास्त्री
७. **जैन समाज के श्रेष्ठ पण्डित** — पण्डिता सुमतिबाई शहा
८. **विद्वद्-शृंखला के जन्मदाता** — पण्डित पन्नालाल साहित्याचार्य
९. **उज्ज्वल चरित्र के साधक** — पण्डित चैनसुखदास न्यायतीर्थ
१०. **महान विद्वानों में से एक** — पण्डित रतनचन्द्र मुख्तार
११. **जैन विद्वानों में एक आदर्शरत्न** — विद्वान् श्री मूलचन्द्र कापड़िया
१२. **जैन जागरण के अरुणोदय** — प्रो. खुशालचन्द गोरावाला
१३. **स्वयंबुद्ध गुरु** — पण्डित परमेष्ठीदास न्यायतीर्थ
१४. **हमारे ज्ञानप्रदाता** — पण्डित नाथूलाल शास्त्री
१५. **पाण्डित्य-संयम: सहज संयोग** — पण्डित विमलकुमार सोंरया
१६. **आचार्य समन्तभद्र के प्रतिरूप** — पण्डित नेमिचन्द्र शास्त्री
१७. **आदर्श विद्वद्रत्न गुरुवर** — पण्डित बालचन्द न्यायतीर्थ
१८. **जेबी कोश के रचयिता** — पण्डित कैलाशचन्द शास्त्री
१९. **विशाल वाङ्मय के अध्येता** — डॉ. दरबारीलाल कोठिया
२०. **सकलतार्किकचक्रचूड़ामणि** — डॉ. राजाराम जैन

(— गुरु गोपालदास वैरया स्मृति ग्रन्थ से साभार)

गुरुवर्य पण्डित गोपालदास वरैया के सम्बन्ध में

श्रेष्ठिवर्ग द्वारा प्रदत्त विशेषतायें

१. **ज्ञानवेल के रोपक**	— साहू शान्तिप्रसाद जैन
२. **पूज्य चरण गुरुजी**	— साहू श्रेयांसप्रसाद जैन
३. **विद्वानों के कुलगुरु**	— सरसेठ भागचन्द सोनी
४. **प्रतिभामूर्ति पण्डितजी**	— सेठ राजकुमारसिंह कासलीवाल
५. **सरलता-सादगी के अवतार**	— श्री मिश्रीलाल गंगवाल
६. **चारित्रमूर्ति श्रावक गुरु**	— शीलचन्द शास्त्री
७. **यश:स्तूप गुरुदेव**	— सेठ मिश्रीलाल काला
८. **एक अनोखा व्यक्तित्व**	— सेठ जगन्नाथ पाण्ड्या
९. **गौरवगिरि गुरु गोपालदास**	— सेठ भगवानदास शोभालाल जैन
१०. **मानवता के उन्नायक**	— सेठ हरिशचन्द्र जैन
११. **उच्चकोटि के साधक**	— श्री यशपाल जैन
१२. **युगदृष्टा श्रद्धेय गुरुजी**	— सवाई सिंघई धन्यकुमार जैन
१३. **बदल दिया इतिहास धरा का**	— श्री शर्मनलाल 'सरस'
१४. **निस्पृह निर्भीक सेवाभावी**	— श्री बाबूलाल जैन फागुल्ल
१५. **एक गोपालदासो गुरुरेक एव**	— श्री अमृतलाल साहित्याचार्य
१६. **समाज के अक्षुण्ण सेवक**	— श्री उग्रसेन बण्डी
१७. **कल्याणकारी महामानव**	— श्री ज्ञानचन्द्र जैन 'स्वतन्त्र'
१८. **प्रतिभाशाली स्वयंबुद्ध गुरुदेव**	— श्री सिद्धसेन जैन गोयलीय
१९. **मातृभाषा के हिमायती**	— श्री नन्ददुलारे वाजपेयी
२०. **कर्मठ विद्वान**	— श्री चन्दूलाल कस्तूरचन्द

(— गुरु गोपालदास वैरया स्मृति ग्रन्थ से साभार)

श्री जैन सिद्धान्त प्रवेशिका, श्री जैन सिद्धान्त दर्पण
सुशीला उपन्यास और अनेक निबन्धों के
सिद्धहस्त लेखक एवं सिद्धान्तवेत्ता

स्याद्वादवारिधि, वादिगजकेसरी, न्यायवाचस्पति

गुरुवर्य पण्डित श्री गोपालदासजी वरैया

देह-संयोग : सन् १८६७] **[देह-वियोग : सन् १९१७**

गुरुवर्य पण्डित श्री गोपालदास वरैया द्वारा रचित

श्री जैन सिद्धान्त प्रवेशिका

(नवीन सम्पादित संस्करण)

ॐ

॥ श्री वीतरागाय नमः ॥

गुरुवर्य पण्डित श्री गोपालदासजी वरैया

द्वारा रचित

श्री जैन सिद्धान्त प्रवेशिका

॥ मङ्गलाचरण ॥

(उपजाति छन्द)

नत्वा जिनेन्द्रं गत-सर्व-दोषं, सर्वज्ञ-देवं हित-दर्शकं च।
श्रीजैन-सिद्धान्त-प्रवेशिकेयं, विरच्यते स्वल्प-धियां हिताय ॥

अर्थ — मैं **(गतसर्वदोषं)** सर्वदोषों से रहित वीतरागी, **(सर्वज्ञदेवं)** सर्वज्ञदेव **(च)** और **(हितदर्शकं)** परमहितोपदेशी — ऐसे **(जिनेन्द्रं)** जिनेन्द्र परमात्मा को **(नत्वा)** नमस्कार करके **(स्वल्पधियां हिताय)** अल्पबुद्धि के धारक जीवों के हित के लिए **(इयं)** यह **(श्रीजैनसिद्धान्त-प्रवेशिका)** श्री जैन सिद्धान्त प्रवेशिका **(विरच्यते)** लिखता हूँ।

विशेषार्थ — यहाँ ग्रन्थकार ने मङ्गलाचरण करते हुए जिनेन्द्र परमात्मा के तीन गुण — वीतरागी, सर्वज्ञ और हितोपदेशी का स्मरण करते हुए उन्हें नमस्कार किया है। तथा ग्रन्थ लिखने की प्रतिज्ञा करते हुए वे लिखते हैं कि मैंने यह 'श्री जैन सिद्धान्त प्रवेशिका', अत्यन्त अल्पबुद्धि के धारक जीवों को ध्यान में रखकर बनायी है अर्थात् विशेष बुद्धिमानजन इसे पढ़कर किसी प्रकार का विसंवाद न करें - ऐसी प्रार्थना भी इसमें सम्मिलित है अर्थात् इससे उनकी विनम्रता का परिचय भी मिलता है।

धर्म और धर्मोपदेश का पात्र

जब तक हमारे चित्त से अन्याय और अभक्ष्यरूपी मलिनता दूर न होगी, तब तक हम धर्म और धर्मोपदेश के पात्र कदापि नहीं हो सकते। इस बात के धोखे में मत रहना कि हमने जैनकुल में जन्म लिया है, हम उन तीर्थङ्करों की सन्तान हैं, जो इस धर्म के अधिष्ठाता थे। यह वह अदालत नहीं है कि जहाँ खानदान के ख्याल से कुछ रियायत की जाए। यह वह सच्ची अदालत है, जहाँ 'दूध का दूध और पानी का पानी' यथार्थ निर्णय होता है, जहाँ बड़े-बड़े धनाढ्य धर्म से विमुख होने पर अचल स्थावर बना दिये जाते हैं; अतः मोह-निद्रा से जागो।

यदि आपको जैनी कहलाने का अभिमान है, यदि आप अपने को उन ऋषि और तीर्थङ्करों की सन्तान समझते हैं, जिनके उज्ज्वल चारित्र का यश दशों दिशाओं में व्याप्त हो रहा था और यदि आपको अपने जैनधर्म की उत्तमता का कुछ भी गर्व है तो सबसे पहले अपने को धर्मोपदेश का पात्र बनाओ। यह अन्याय-अभक्ष्य सेवन का कलङ्क धो डालो। क्या तुमको इस बात की कुछ भी लज्जा नहीं आती कि हम जैनी होकर माँस-मदिरा मिश्रित अस्पताल की औषधी कैसे ग्रहण करते हैं। क्या तुमको इस बात की शरम नहीं आती कि हम उत्तम कुलीन होकर वेश्या तथा परस्त्री सेवन और रात्रिभोजन किस प्रकार करते हैं।

यदि आपको धर्मोन्नति करने का कुछ भी प्रेम है तो रात्रिभोजन, मद्य, माँस, मधु, पञ्च उदुम्बर फल और सप्त व्यसन का शीघ्र ही त्याग करके अपने को धर्म और धर्मोपदेश का पात्र बनाओ। जब तक पात्र नहीं बनोगे, तब तक धर्म की प्राप्ति असंभव है।

— गुरुवर्य गोपालदास वरैया, 'उन्नति' (लेख), स्मृति-ग्रन्थ, पृष्ठ २१०

प्रथम अध्याय

द्रव्य-गुण-पर्याय

(दोहा)

द्रव्य-गुण-पर्याय का, जो नित होवे ज्ञान।
शीघ्र मिले सम्यक्त्व पद, पावे पद निर्वाण।।

१.१ द्रव्य और गुण

प्रश्न १ — द्रव्य किसे कहते हैं?[१]

उत्तर — गुणों के समूह को **द्रव्य** कहते हैं।

प्रश्न २ — गुण किसे कहते हैं?

उत्तर — जो द्रव्य के सम्पूर्ण भागों और उसकी सर्व अवस्थाओं में रहते हैं, उन्हें **गुण** कहते हैं।

प्रश्न ३ — गुण के कितने भेद हैं?

उत्तर — गुण के **दो** भेद हैं — सामान्य और विशेष।

प्रश्न ४ — सामान्यगुण किसे कहते हैं?

उत्तर — जो सब द्रव्यों में समानरूप से रहते हैं, उन्हें **सामान्यगुण** कहते हैं।

प्रश्न ५ — विशेषगुण किसे कहते हैं?

उत्तर — जो सब द्रव्यों में न रहकर अपने-अपने द्रव्य में रहते हैं, उन्हें **विशेषगुण** कहते हैं।

---

१. **प्रश्न — विश्व किसे कहते हैं?**
उत्तर — छह द्रव्यों के समूह को **विश्व** कहते हैं।
(— लघु जैन सिद्धान्त प्रवेशिका, प्रश्न १)

प्रश्न ६ — सामान्यगुण कितने हैं?

उत्तर — सामान्यगुण **अनेक** हैं, लेकिन उनमें **छह** मुख्य हैं।

जैसे — अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, प्रमेयत्व, अगुरुलघुत्व और प्रदेशत्वगुण।

प्रश्न ७ — अस्तित्वगुण किसे कहते हैं?

उत्तर — जिस शक्ति के कारण द्रव्य का कभी नाश नहीं होता है, उसे **अस्तित्वगुण** कहते हैं।

प्रश्न ८ — वस्तुत्वगुण किसे कहते हैं?

उत्तर — जिस शक्ति के कारण द्रव्य में अर्थक्रिया होती है, उसे **वस्तुत्वगुण** कहते हैं। जैसे — घड़े की अर्थक्रिया जल धारण करना है।

प्रश्न — द्रव्यत्वगुण किसे कहते हैं?

उत्तर — जिस शक्ति के कारण द्रव्य सर्वदा एक-सा नहीं रहता और जिसकी पर्यायें (दशाऐं) हमेशा बदलती रहती हैं, उसे **द्रव्यत्वगुण** कहते हैं।

प्रश्न १० — प्रमेयत्वगुण किसे कहते हैं?

उत्तर — जिस शक्ति के कारण द्रव्य किसी न किसी के ज्ञान का विषय होता है, उसे **प्रमेयत्वगुण** कहते हैं।

प्रश्न ११ — अगुरुलघुत्वगुण किसे कहते हैं?

उत्तर — जिस शक्ति के कारण द्रव्य में द्रव्यपना कायम रहता है अर्थात् एक द्रव्य दूसरे द्रव्यरूप नहीं परिणमता और एक गुण दूसरे गुणरूप नहीं परिणमता और द्रव्य में रहनेवाले अनन्त गुण बिखर कर अलग-अलग नहीं होते हैं, उसे **अगुरुलघुत्वगुण** कहते हैं।

प्रश्न १२ — प्रदेशत्वगुण किसे कहते हैं?

उत्तर — जिस शक्ति के कारण द्रव्य का कोई न कोई आकार अवश्य होता है, उसे **प्रदेशत्वगुण** कहते हैं।

१.२ द्रव्यों के भेद एवं स्वरूप

प्रश्न १३ — द्रव्यों के कितने भेद हैं?

उत्तर — द्रव्यों के **छह** भेद हैं — जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और कालद्रव्य।

प्रश्न १४ — जीवद्रव्य किसे कहते हैं?

उत्तर — जिनमें चेतना आदि गुण पाये जाते हैं, उन्हें **जीवद्रव्य** कहते हैं।

प्रश्न १५ — पुद्गलद्रव्य किसे कहते हैं?

उत्तर — जिनमें स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण आदि गुण पाये जाते हैं, उन्हें **पुद्गलद्रव्य** कहते हैं।

प्रश्न १६ — पुद्गल के कितने भेद हैं?

उत्तर — पुद्गल के **दो** भेद हैं — परमाणु और स्कन्ध।

प्रश्न १७ — परमाणु किसे कहते हैं?

उत्तर — जिसका दूसरा विभाग नहीं हो सकता — ऐसे सबसे सूक्ष्म पुद्गल को **परमाणु** कहते हैं, यही वास्तव में पुद्गलद्रव्य है।

प्रश्न १८ — स्कन्ध किसे कहते हैं?

उत्तर — अनेक परमाणुओं के बन्ध को **स्कन्ध** कहते हैं।

प्रश्न १९ — बन्ध किसे कहते हैं?

उत्तर — अनेक वस्तुओं में एकपने का ज्ञान कराने वाले सम्बन्ध-विशेष को **बन्ध** कहते हैं।

प्रश्न २० — स्कन्ध के कितने भेद हैं?

उत्तर — स्कन्ध के आहारवर्गणा, तैजसवर्गणा, भाषावर्गणा, मनो-वर्गणा, कार्मणवर्गणा आदि **२३** भेद हैं।

प्रश्न २१— आहारवर्गणा किसे कहते हैं?

उत्तर — जो पुद्गलस्कन्ध या वर्गणा, औदारिक, वैक्रियिक और आहारक — इन तीन शरीररूप तथा श्वासोच्छ्वासरूप परिणमित होते हैं, उन्हें **आहारवर्गणा** कहते हैं।

प्रश्न २२ — औदारिक शरीर किसे कहते हैं?

उत्तर — मनुष्य और तिर्यञ्च के स्थूल शरीर को **औदारिक शरीर** कहते हैं।

प्रश्न २३ — वैक्रियिक शरीर किसे कहते हैं?

उत्तर — जो छोटे-बड़े, एक-अनेक, पृथक्-अपृथक् आदि विचित्र क्रियाओं को कर सकता है — ऐसे देव और नारकियों के शरीर को **वैक्रियिक शरीर** कहते हैं।

प्रश्न २४ — आहारक शरीर किसे कहते हैं?

उत्तर — छठवें गुणस्थानवर्ती मुनि को जिनालय आदि की वन्दना करने हेतु अथवा तत्त्वों के सम्बन्ध में कोई शङ्का होने पर केवली या श्रुतकेवली के पास जाने के लिए मस्तक में से जो एक हाथ का स्वच्छ, सफेद, सप्तधातुरहित पुरुषाकार जो पुतला निकलता है, उसे **आहारक शरीर** कहते हैं।

प्रश्न २५ — तैजसवर्गणा किसे कहते हैं?[१]

१. **प्रश्न — तैजस शरीर किसे कहते हैं?**

उत्तर — औदारिक और वैक्रियिक शरीर को कान्ति देनेवाले शरीर को **तैजस शरीर** कहते हैं। **(— लघु जैन सिद्धान्त प्रवेशिका, प्रश्न १)**

उत्तर — जो पुद्गलस्कन्ध, तैजस शरीररूप परिणमित होते हैं, उन्हें **तैजसवर्गणा** कहते हैं।

प्रश्न २६ — भाषावर्गणा किसे कहते हैं?

उत्तर — जो पुद्गलस्कन्ध, शब्दरूप परिणमित होते हैं, उन्हें **भाषावर्गणा** कहते हैं।

प्रश्न २७ — मनोवर्गणा किसे कहते हैं?

उत्तर — जो पुद्गलस्कन्ध, द्रव्य-मनरूप परिणमित होते हैं, उन्हें **मनोवर्गणा** कहते हैं।

प्रश्न २८ — कार्मणवर्गणा किसे कहते हैं?

उत्तर — जो पुद्गलस्कन्ध, कार्मण शरीररूप परिणमते हैं, उन्हें **कार्मणवर्गणा** कहते हैं।

प्रश्न २९ — कार्मण शरीर किसे कहते हैं?

उत्तर — ज्ञानावरणादि अष्ट कर्मों के समूह को **कार्मण शरीर** कहते हैं।

प्रश्न ३० — तैजस और कार्मण शरीर किसके होते हैं?

उत्तर — तैजस और कार्मण शरीर **सभी संसारी जीवों** को होते हैं।[१]

प्रश्न ३१ — धर्मद्रव्य किसे कहते है?

उत्तर — जो स्वयं गतिरूप से परिणमित जीवों और पुद्गलों को

१. **प्रश्न — एक जीव के एक साथ कितने शरीर हो सकते हैं?**

उत्तर — एक जीव के एकसाथ कम से कम दो और अधिक से अधिक चार शरीर हो सकते हैं। विग्रहगति में तैजस और कार्मण; मनुष्य और तिर्यञ्च के औदारिक, तैजस और कार्मण; देवों और नारकियों के वैक्रियक, तैजस और कार्मण; तथा आहारक ऋद्धिधारी मुनि के औदारिक, आहारक, तैजस और कार्मण शरीर होते हैं।

(— लघु जैन सिद्धान्त प्रवेशिका, प्रश्न ३५)

गमन करने (चलने) में सहकारी हो अथवा निमित्त हो, उसे **धर्मद्रव्य** कहते हैं। जैसे – मछली के गमन में जल।

प्रश्न ३२ – अधर्मद्रव्य किसे कहते हैं?

उत्तर – जो गतिपूर्वक स्वयंरूप स्थितिरूप से परिणमित जीव और पुद्गलों को रुकने (ठहरने) में सहकारी अथवा निमित्त हो, उसे **अधर्मद्रव्य** कहते हैं। जैसे – पथिक को रुकने में वृक्ष की छाया।

प्रश्न ३३ – आकाशद्रव्य किसे कहते हैं?

उत्तर – जो जीवादि पाँच द्रव्यों को रहने के लिए स्थान देता है, उसे **आकाशद्रव्य** कहते हैं। जैसे – मनुष्यों को रहने के लिए घर, मकान आदि।

प्रश्न ३४ – कालद्रव्य किसे कहते है?

उत्तर – जो जीवादि समस्त द्रव्यों के परिणमन में सहकारी अथवा निमित्त होता है, उसे **कालद्रव्य** कहते हैं। जैसे – कुम्हार के चाक को घूमने में लोहे की कीली।

प्रश्न ३५ – काल के कितने भेद हैं?

उत्तर – काल के **दो** भेद हैं – निश्चयकाल और व्यवहारकाल।

प्रश्न ३६ – निश्चयकाल किसे कहते है?

उत्तर – कालद्रव्य को **निश्चयकाल** कहते हैं।

प्रश्न ३७ – व्यवहारकाल किसे कहते हैं?

उत्तर – कालद्रव्य की पल, घड़ी, दिन, माह, वर्ष आदि पर्यायों को **व्यवहारकाल** कहते हैं।

१.३ पर्याय

प्रश्न ३८ – पर्याय किसे कहते हैं?

उत्तर – गुणों के विकार (परिणमन या कार्य) को **पर्याय** कहते हैं।

प्रश्न ३९ – पर्याय के कितने भेद हैं?

उत्तर – पर्याय के **दो** भेद हैं – व्यञ्जनपर्याय और अर्थपर्याय।

प्रश्न ४० – व्यञ्जनपर्याय किसे कहते हैं?

उत्तर – प्रदेशत्वगुण के विकार (परिणमन या कार्य) को **व्यञ्जनपर्याय** कहते हैं।

प्रश्न ४१ – व्यञ्जनपर्याय के कितने भेद हैं?

उत्तर – व्यञ्जनपर्याय के **दो** भेद हैं – स्वभाव-व्यञ्जनपर्याय और विभाव-व्यञ्जनपर्याय।

प्रश्न ४२ – स्वभाव-व्यञ्जनपर्याय किसे कहते हैं?

उत्तर – अन्य के निमित्त बिना जो व्यञ्जनपर्याय होती है, उसे **स्वभाव-व्यञ्जनपर्याय** कहते हैं। जैसे – जीव की सिद्ध पर्याय।

प्रश्न ४३ – विभाव-व्यञ्जनपर्याय किसे कहते हैं?

उत्तर – अन्य के निमित्तसहित जो व्यञ्जनपर्याय होती है, उसे **विभाव-व्यञ्जनपर्याय** कहते हैं। जैसे – जीव की नर-नारकादि पर्याय।

प्रश्न ४४ – अर्थपर्याय किसे कहते हैं?

उत्तर – प्रदेशत्वगुण के अलावा अन्य समस्त गुणों के विकार (परिणमन या कार्य) को **अर्थपर्याय** कहते हैं।

प्रश्न ४५ – अर्थपर्याय के कितने भेद हैं?

उत्तर – अर्थपर्याय के **दो** भेद हैं – स्वभाव-अर्थपर्याय और विभाव-अर्थपर्याय।

प्रश्न ४६ – स्वभाव-अर्थपर्याय किसे कहते हैं?

उत्तर – अन्य के निमित्त बिना जो अर्थपर्याय होती है, उसे **स्वभाव-अर्थपर्याय** कहते हैं। जैसे – जीव का केवलज्ञान।

प्रश्न ४७ — विभाव-अर्थपर्याय किसे कहते हैं?

उत्तर — अन्य के निमित्तसहित जो अर्थपर्याय होती है, उसे **विभाव-अर्थपर्याय** कहते हैं। जैसे — जीव के राग-द्वेष आदि।[१]

१.४ उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य

प्रश्न ४८ — उत्पाद किसे कहते हैं?

उत्तर — द्रव्य में नवीन पर्याय की प्राप्ति को **उत्पाद** कहते हैं।

प्रश्न ४९ — व्यय किसे कहते हैं?

उत्तर — द्रव्य में पूर्व पर्याय के त्याग को **व्यय** कहते हैं।

प्रश्न ५० — ध्रौव्य किसे कहते हैं?

उत्तर — प्रत्यभिज्ञान की कारणभूत द्रव्य की किसी अवस्था की नित्यता को **ध्रौव्य** कहते हैं।

१.५ द्रव्यों के विशेषगुण

प्रश्न ५१ — प्रत्येक द्रव्य के विशेषगुण कौन-कौन से हैं?

उत्तर — जीवद्रव्य में चेतना, सम्यक्त्व, चारित्र, सुख, क्रियावतीशक्ति[२] इत्यादि। पुद्गलद्रव्य में स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण,

१. प्रश्न — किस-किस द्रव्य में कौन-कौनसी पर्यायें होती हैं?

उत्तर — जीव और पुद्गलद्रव्य में स्वभाव-अर्थपर्याय, विभाव-अर्थपर्याय, स्वभाव-व्यञ्जनपर्याय और विभाव-व्यञ्जनपर्याय — इस प्रकार चारों पर्यायें होती हैं। धर्म, अधर्म, आकाश और कालद्रव्य में स्वभाव-अर्थपर्याय और स्वभाव-व्यंजनपर्याय — इस तरह केवल दो पर्यायें होती हैं। **(— लघु जैन सिद्धान्त प्रवेशिका, प्रश्न ६८)**

२. जीव और पुद्गल में क्रियावतीशक्ति नाम का गुण नित्य है, उसके कारण अपनी-अपनी योग्यतानुसार कभी क्षेत्रान्तररूप पर्याय होती है, कभी स्थिर रहनेरूप पर्याय होती है। कोई द्रव्य (जीव या पुद्गल) एक-दूसरे को गमन या स्थिरता नहीं करा सकते, दोनों द्रव्य अपनी-अपनी क्रियावतीशक्ति की उस समय की योग्यता के अनुसार स्वत: गमन करते हैं या स्थिर होते हैं। **(— वही, प्रश्न १६ की पाद-टिप्पणी)**

क्रियावतीशक्ति आदि। धर्मद्रव्य में गतिहेतुत्व आदि। अधर्मद्रव्य में स्थितिहेतुत्व आदि। आकाशद्रव्य में अवगाहनहेतुत्व आदि और काल द्रव्य में परिणमनहेतुत्व आदि विशेषगुण हैं।

१.६ लोक और अलोक

प्रश्न ५२ — आकाश के कितने भेद हैं?

उत्तर — आकाश **एक** अखण्ड द्रव्य है।

प्रश्न ५३ — आकाश कहाँ पर है?

उत्तर — आकाश **सर्वव्यापी** है।

प्रश्न ५४ — लोकाकाश किसे कहते हैं?

उत्तर — आकाश में जहाँ तक जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और काल — ये पाँच द्रव्य रहते हैं, उसे **लोकाकाश** कहते हैं।

प्रश्न ५५ — अलोकाकाश किसे कहते हैं?

उत्तर — लोक से बाहर के आकाश को **अलोकाकाश** कहते हैं।

प्रश्न ५६ — लोक की मोटाई, ऊँचाई और चौड़ाई कितनी है?[१]

उत्तर — लोक की मोटाई, उत्तर और दक्षिण दिशा में सब जगह सात राजू है। चौड़ाई पूर्व और पश्चिम दिशा में सबसे नीचे सात राजू है। ऊपर क्रम से घटकर सात राजू की ऊँचाई पर एक राजू है। फिर क्रम

१. लोक की रचना कमर पर दोनों तरफ रखकर खड़े हुए मनुष्य के समान मानी गयी है अथवा नीचे एक उल्टी अर्द्धमृदङ्ग और उसके ऊपर एक पूर्ण मृदङ्ग रखने पर जैसी आकृति बनती है, उसके समान है। लोक का प्रमाण ३४३ घन राजू है। यह सम्पूर्ण लोक तीन प्रकार के वातवलय से वेष्टित है — १. घनोदधिवात, २. घनवातवलय और ३. तुनवातवलय। ये तीनों वातवलय सामान्यतया २०—२० हजार योजन प्रमाण मोटाई वाले हैं। यह लोक तीन भागों में विभाजित हैं — १. अधोलोक, २. मध्यलोक और ३. उर्ध्वलोक। सम्पूर्ण लोक के बाहर दशों दिशाओं में अनन्त अलोकाकाश है।

(— जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश, भाग ३, पृष्ठ ४३८ के आधार पर)

से बढ़कर साढ़े दस राजू की ऊँचाई पर पाँच राजू है। फिर क्रम से घटकर चौदह राजू की ऊँचाई पर पुनः एक राजू है तथा लोक की ऊँचाई ऊर्ध्व और अधो दिशा में चौदह राजू है।

प्रश्न ५७ – धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य खण्डरूप हैं अथवा अखण्डरूप? तथा इनका स्थान कहाँ है?

उत्तर – धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य दोनों एक-एक अखण्ड द्रव्य हैं और दोनों ही समस्त लोकाकाश में व्याप्त हैं।

प्रश्न ५८ – प्रदेश किसे कहते हैं?

उत्तर – आकाश के जितने भाग में एक पुद्गल परमाणु व्याप्त होता है, उसे **प्रदेश** कहते हैं?[१]

प्रश्न ५९ – कालद्रव्य कितने हैं और कहाँ है?

उत्तर – लोकाकाश के जितने प्रदेश हैं, उतने ही कालद्रव्य हैं अर्थात् लोक प्रमाण असंख्यात हैं; क्योंकि लोकाकाश के एक-एक प्रदेश पर एक-एक कालद्रव्य (कालाणु) स्थित है।

प्रश्न ६० – पुद्गलद्रव्य कितने हैं और उनका स्थान कहाँ है?

उत्तर – पुद्गलद्रव्य **अनन्तानन्त** हैं और वे भी समस्त लोकाकाश में भरे हुए हैं।

प्रश्न ६१ – जीवद्रव्य कितने और कहाँ हैं?

उत्तर – जीवद्रव्य **अनन्त** हैं और वे समस्त लोकाकाश में भरे हुए हैं।

---

१. **प्रश्न – किस द्रव्य में कितने प्रदेश हैं?**

उत्तर – जीव, धर्म, अधर्म और लोकाकाश के असंख्यात प्रदेश हैं। पुद्गल-स्कन्ध के संख्यात, असंख्यात और अनन्त – इस तरह तीनों प्रकार के प्रदेश हैं। कालद्रव्य और पुद्गलपरमाणु एकप्रदेशी है। **(– लघु जैन सिद्धान्त प्रवेशिका, प्रश्न ५५)**

प्रश्न ६२ – प्रत्येक जीव कितना बड़ा है?

उत्तर – प्रत्येक जीव, प्रदेशों की संख्या अपेक्षा **लोकाकाश के बराबर** है, परन्तु संकोच-विस्तार के कारण वह अपने शरीर के प्रमाण है और मुक्तजीव अन्तित शरीर प्रमाण हैं।

प्रश्न ६३ – लोकाकाश के बराबर कौनसा जीव है?

उत्तर – मोक्ष जाने से पहले केवली-समुद्घात करनेवाला जीव लोकाकाश के बराबर होता है।

प्रश्न ६४ – समुद्घात किसे कहते हैं?

उत्तर – मूल शरीर को छोड़े बिना जीव के प्रदेशों का शरीर से बाहर निकलना **समुद्घात** कहलाता है।

१.७ अस्तिकाय

प्रश्न ६५ – अस्तिकाय किसे कहते हैं?

उत्तर – बहुप्रदेशी द्रव्य को **अस्तिकाय** कहते हैं।

प्रश्न ६६ – अस्तिकाय के कितने भेद हैं?

उत्तर – अस्तिकाय के **पाँच** भेद हैं – जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और आकाश; इन पाँचों द्रव्यों को **पञ्चास्तिकाय** कहते हैं। कालद्रव्य बहुप्रदेशी नहीं हैं, इसलिए वह अस्तिकाय नहीं है।

प्रश्न ६७ – पुद्गल परमाणु भी एक प्रदेशी है तो वह अस्तिकाय कैसे हुआ?

उत्तर – पुद्गल परमाणु एक प्रदेशी होने पर भी शक्ति की अपेक्षा से अस्तिकाय है अर्थात् वह स्कन्धरूप होकर बहुप्रदेशी हो जाता है, इसलिए उपचार से उसे भी अस्तिकाय कहा है।

१.८ अनुजीवी और प्रतिजीवी गुण

प्रश्न ६८ — अनुजीवी गुण किसे कहते हैं?

उत्तर — वस्तु के भावस्वरूप गुणों को **अनुजीवी गुण** कहते हैं। जैसे — सम्यक्त्व, चारित्र, सुख, चेतना, स्पर्श, रस, गंध, वर्ण आदि।

प्रश्न ६९ — प्रतिजीवी गुण किसे कहते हैं?

उत्तर — वस्तु के अभावस्वरूप धर्म को **प्रतिजीवी गुण** कहते हैं। जैसे — नास्तित्व, अमूर्तत्व, अचेतनत्व आदि।

१.८.१ चार अभाव

प्रश्न ७० — अभाव किसे कहते हैं?

उत्तर — एक पदार्थ की दूसरे पदार्थ में नास्ति (अविद्यमानता) को **अभाव** कहते हैं।

प्रश्न ७१ — अभाव के कितने भेद हैं?

उत्तर — अभाव के **चार** भेद हैं — प्रागभाव, प्रध्वंसाभाव, अन्योन्याभाव और अत्यन्ताभाव।

प्रश्न ७२ — प्रागभाव किसे कहते हैं?

उत्तर — वर्तमान पर्याय का पूर्व पर्याय में अभाव, **प्रागभाव** है।

प्रश्न ७३ — प्रध्वंसाभाव किसे कहते हैं?

उत्तर — वर्तमानपर्याय का आगामी पर्याय में अभाव, **प्रध्वंसाभाव** है।

प्रश्न ७४ — अन्योन्याभाव किसे कहते हैं?[१]

[१]. श्रीसमयसार के हिन्दी टीकाकार पण्डित जयचन्दजी छाबड़ा कृत आप्तमीमांसा वचनिका, श्लोक ११ की टीका में लिखा है — **'अन्य स्वभावरूप वस्तु तैं अपने स्वभाव का भिन्नपना, याकूं इतरेतराभाव कहिए'** अर्थात् अन्य स्वभावरूप वस्तु से अपने स्वभाव का भिन्नपना — इसको **इतरेतराभाव** कहते हैं। इतरेतराभाव का दूसरा नाम **अन्योन्याभाव** है। **(— जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश, भाग १, पृष्ठ १२८ के आधार पर)**

उत्तर — एक पुद्गलद्रव्य की वर्तमान पर्याय में दूसरे पुद्गलद्रव्य की वर्तमान पर्याय के अभाव को **अन्योन्याभाव** कहते हैं।

प्रश्न ७५ — अत्यन्ताभाव किसे कहते हैं?

उत्तर — एक द्रव्य में दूसरे द्रव्य का जो अभाव होता है, उसे **अत्यन्ताभाव** कहते हैं।[१]

१.८.२ जीव के अनुजीवी गुण

प्रश्न ७६ — जीव के अनुजीवी गुण कौनसे हैं?

उत्तर — चेतना, सम्यक्त्व, चारित्र, सुख, वीर्य, भव्यत्व, अभव्यत्व,

[१]. **प्रश्न — इन चार अभावों को समझने से क्या लाभ है?**

उत्तर — (१) प्रागभाव को समझने से यह लाभ है कि किसी जीव ने यदि अनादिकाल से अज्ञान-मिथ्यात्वादि दोष किये हों, धर्म कभी नहीं किया हो तो भी वह जीव नवीन पुरुषार्थ से धर्म प्राप्त कर सकता है, क्योंकि वर्तमान पर्याय का पूर्व पर्याय में अभाव है।

(२) प्रध्वंसाभाव को समझने से यह लाभ है कि यदि किसी जीव ने वर्तमान अवस्था में धर्म न किया हो तो भी वह जीव उस अधर्म दशा का तुरन्त अभाव करके नवीन पुरुषार्थ से धर्म प्राप्त कर सकता है।

(३) अन्योन्याभाव को समझने से यह लाभ है कि यदि एक पुद्गलद्रव्य की पर्याय, दूसरे पुद्गल की पर्यायों का कुछ भी नहीं कर सकती है अर्थात् एक-दूसरे को मदद, सहायता, असर या प्रेरणादि कुछ भी नहीं कर सकती।

(४) अत्यन्ताभाव को समझने से यह लाभ है कि यदि प्रत्येक द्रव्य में दूसरे द्रव्य का अभाव होने से कोई द्रव्य, अन्य द्रव्य की पर्यायों में कुछ भी नहीं करता अर्थात् सहायता, असर, मदद या प्रेरणा इत्यादि कुछ भी नहीं कर सकता। शास्त्र में जो कुछ अन्य में करने-कराने आदि का कथन है, वह घी के घडे के समान मात्र व्यवहार का कथन है, सत्यार्थ नहीं है।

चार अभावों के सम्बन्ध में ऐसी समझ करने से स्वसन्मुखता का पुरुषार्थ होता है — यही सच्चा लाभ है। **(— लघु जैन सिद्धान्त प्रवेशिका, प्रश्न १२३)**

जीवत्व, वैभाविक, कर्तृत्व, भोक्तृत्व आदि अनन्त गुण **अनुजीवी गुण** हैं।

१.८.३ जीव के प्रतिजीवी गुण

प्रश्न ७७ — जीव के प्रतिजीवी गुण कौनसे हैं?

उत्तर — अव्याबाध, अवगाह, अगुरुलघु, सूक्ष्मत्व, नास्तित्व आदि अनन्त गुण **प्रतिजीवी गुण** हैं।

१.८.४ जीव के अनुजीवी गुणों का विस्तृत विवेचन

प्रश्न ७८ — चेतना किसे कहते हैं?

उत्तर — जिसमें पदार्थों का प्रतिभास होता है, उसे **चेतना** कहते हैं।

प्रश्न ७९ — चेतना के कितने भेद हैं?

उत्तर — चेतना के दो भेद हैं — दर्शनचेतना और ज्ञानचेतना।

प्रश्न ८० — दर्शनचेतना किसे कहते हैं?

उत्तर — जिसमें महासत्ता (सामान्य) का प्रतिभास (निराकार झलक या अवभासन) होता है, उसे **दर्शनचेतना** कहते हैं।

प्रश्न ८१ — महासत्ता किसे कहते हैं?

उत्तर — समस्त पदार्थों के अस्तित्व को ग्रहण करनेवाली सत्ता को **महासत्ता** कहते हैं।

प्रश्न ८२ — ज्ञानचेतना किसे कहते हैं?

उत्तर — अवान्तरसत्ता-विशिष्ट-विशेष पदार्थ को विषय करनेवाली चेतना को **ज्ञानचेतना** कहते हैं।

प्रश्न ८३ — अवान्तरसत्ता किसे कहते हैं?

उत्तर — किसी विवक्षित पदार्थ की सत्ता को **अवान्तरसत्ता** कहते हैं।

प्रश्न ८४ — दर्शनचेतना के कितने भेद हैं?

उत्तर — दर्शनचेतना के **चार** भेद हैं — चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन और केवलदर्शन।[१]

प्रश्न ८५ — ज्ञानचेतना के कितने भेद हैं?

उत्तर — ज्ञानचेतना के पाँच भेद हैं — मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन:पर्ययज्ञान और केवलज्ञान।

प्रश्न ८६ — मतिज्ञान किसे कहते हैं?

उत्तर — इन्द्रिय और मन की सहायता से जो ज्ञान होता है, उसे **मतिज्ञान** कहते हैं।

प्रश्न ८७ — मतिज्ञान के कितने भेद हैं?

उत्तर — मतिज्ञान के दो भेद हैं — सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष और परोक्ष।[२]

प्रश्न ८८ — परोक्ष मतिज्ञान के कितने भेद हैं?

उत्तर — परोक्ष मतिज्ञान के **चार** भेद हैं — स्मृति, प्रत्यभिज्ञान, तर्क और अनुमान।

प्रश्न ८९ — मतिज्ञान के अन्य प्रकार से कितने भेद हैं?

उत्तर — अन्य प्रकार से मतिज्ञान के **चार** भेद हैं — अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा।

प्रश्न ९० — अवग्रह किसे कहते हैं?

---

१. **प्रश्न — दर्शनचेतना कब उत्पन्न होती है?**

उत्तर — दर्शनचेतना छद्मस्थ जीवों को ज्ञान के पहले और केवलज्ञानियों को ज्ञान के साथ-साथ उत्पन्न होती है। **(— लघु जैन सिद्धान्त प्रवेशिका, प्रश्न ८२)**

२. व्यवहारिक दृष्टि से जो मतिज्ञान इन्द्रिय और मन के द्वारा साक्षात् होता है, वह **सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष मतिज्ञान** कहलाता है तथा जो मतिज्ञान सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष या धारणा के बाद होता है, वह **परोक्ष मतिज्ञान** कहलाता है।

(— परीक्षामुख आदि न्यायग्रन्थों के आधार पर)

उत्तर — इन्द्रिय और पदार्थ का यथायोग्य सम्बन्ध होने के बाद उत्पन्न हुए सामान्य प्रतिभासरूप दर्शन के पश्चात् अवान्तरसत्तासहित विशेष वस्तु को ग्रहण करनेवाले विशेष ज्ञान को **अवग्रह** कहते हैं। जैसे — यह मनुष्य है।

प्रश्न ९१ — ईहा किसे कहते हैं?

उत्तर — अवग्रह से जाने हुए पदार्थ के विशेष को जानने के लिए उत्पन्न हुए संशय को दूर करने वाले इच्छारूप ज्ञान को **ईहा** कहते हैं, जैसे — ये ठाकुरदासजी होना चाहिए? यह ज्ञान भी इतना कमजोर है कि यदि किसी पदार्थ की ईहा होकर छूट जाये, उसका निश्चय न हो तो उसके विषय में कालान्तर में संशय और विस्मरण हो जाता है।

प्रश्न ९२ — अवाय किसे कहते हैं?

उत्तर — ईहा से जाने हुए पदार्थ में 'यह वही है, अन्य नहीं हैं' — ऐसे निश्चयात्मक ज्ञान को **अवाय** कहते हैं, जैसे — ये ठाकुरदासजी ही हैं; अन्य नहीं हैं। अवाय से जाने हुए पदार्थ में संशय तो नहीं होता, किन्तु विस्मरण हो सकता है।

प्रश्न ९३ — धारणा किसे कहते हैं?

उत्तर — जिस ज्ञान से जाने हुए पदार्थों में कालान्तर में संशय तथा विस्मरण नहीं होता है, उसे **धारणा** कहते हैं।

प्रश्न ९४ — मतिज्ञान के विषयभूत पदार्थों के कितने भेद हैं?

उत्तर — मतिज्ञान के विषयभूत पदार्थों के **दो** भेद हैं — व्यक्त और अव्यक्त।

प्रश्न ९५ — क्या अवग्रहादि ज्ञान दोनों ही प्रकार के पदार्थों का होता है?

उत्तर — व्यक्त पदार्थों के अवग्रहादि चारों ही ज्ञान होते हैं, परन्तु अव्यक्त पदार्थों का सिर्फ अवग्रह ही होता है क्योंकि अवग्रह के भी दो

भेद हैं — अर्थावग्रह और व्यञ्जनावग्रह।

प्रश्न ९६ — अर्थावग्रह किसे कहते हैं?

उत्तर — व्यक्त पदार्थों के अवग्रह को **अर्थावग्रह** कहते हैं।

प्रश्न ९७ — व्यञ्जनावग्रह किसे कहते हैं?

उत्तर — अव्यक्त पदार्थों के अवग्रह को **व्यञ्जनावग्रह** कहते हैं।

प्रश्न ९८ — अर्थावग्रह की तरह व्यञ्जनावग्रह भी क्या सभी इन्द्रियों और मन द्वारा होता है?

उत्तर — नहीं, व्यञ्जनावग्रह चक्षु और मन को छोड़कर शेष सब इन्द्रियों द्वारा होता है।

प्रश्न ९९ — व्यक्त और अव्यक्त पदार्थों के कितने भेद हैं?

उत्तर — व्यक्त और अव्यक्त पदार्थों के बारह-बारह भेद छह जोड़ों में हैं — बहु, एक; बहुविध, एकविध; क्षिप्र, अक्षिप्र; अनि:सृत, नि:सृत; अनुक्त, उक्त; ध्रुव और अध्रुव।[१]

प्रश्न १०० — श्रुतज्ञान किसे कहते हैं?[२]

उत्तर — मतिज्ञान से जाने हुए पदार्थ के सम्बन्ध से किसी दूसरे पदार्थ के ज्ञान को **श्रुतज्ञान** कहते हैं। जैसे — 'घट' शब्द सुनने के बाद उत्पन्न हुआ कम्बु-ग्रीवा आदि आकाररूप घट का ज्ञान।

---

१. **बहु** — बहुत या अनेक पदार्थ। **एक** — अल्प या एक पदार्थ।
बहुविध — बहुत प्रकार के पदार्थ। **एकविध** — एक प्रकार के पदार्थ।
क्षिप्र — तेज गतिवाले पदार्थ। **अक्षिप्र** — मन्द गतिवाले पदार्थ।
अनि:सृत — आंशिक दिखनेवाले पदार्थ। **नि:सृत** — पूर्ण दिखनेवाले पदार्थ।
अनुक्त — अवर्णित या अकथित पदार्थ। **उक्त** — वर्णित या कथित पदार्थ।
ध्रुव — स्थिर पदार्थ। **अध्रुव** — अस्थिर पदार्थ।

(— तत्त्वार्थसूत्र १/१६ की टीका के आधार)

२. अवधिज्ञान, मन:पर्ययज्ञान और केवलज्ञान की परिभाषायें पञ्चम अध्याय में प्रश्न क्रमाङ्क ५८२, ५८३ एवं ५८५ पर क्रमश: दी गयी हैं।

प्रश्न १०१ — दर्शन कब होता है?

उत्तर — अल्पज्ञ जीवों को ज्ञान के पहले दर्शन होता है, क्योंकि बिना दर्शन के ज्ञान नहीं होता; परन्तु सर्वज्ञदेव को केवलज्ञान और केवलदर्शन साथ-साथ होते हैं।

प्रश्न १०२ — चक्षुदर्शन किसे कहते हैं?

उत्तर — चक्षु सम्बन्धी मतिज्ञान से पहले होनेवाले सामान्य प्रतिभास या सामान्य अवलोकन को **चक्षुदर्शन** कहते हैं।

प्रश्न १०३ — अचक्षुदर्शन किसे कहते हैं?

उत्तर — चक्षु के अलावा अन्य इन्द्रियों और मन सम्बन्धी मतिज्ञान से पहले होनेवाले सामान्य अवलोकन को **अचक्षुदर्शन** कहते हैं।

प्रश्न १०४ — अवधिदर्शन किसे कहते हैं?

उत्तर — अवधिज्ञान से पहले होनेवाले सामान्य अवलोकन को **अवधिदर्शन** कहते हैं।

प्रश्न १०५ — केवलदर्शन किसे कहते हैं?

उत्तर — केवलज्ञान के साथ-साथ होनेवाले सामान्य अवलोकन को **केवलदर्शन** कहते हैं।

प्रश्न १०६ — सम्यक्त्वगुण किसे कहते हैं?[१]

१. सम्यक्त्वगुण का पर्यायवाची श्रद्धागुण है। सम्यग्दर्शन और मिथ्यादर्शन उसकी क्रमशः स्वभाव और विभावपर्यायें हैं। सम्यग्दर्शन के अनेक लक्षण हैं, उनमें चार मुख्य हैं — (१) आत्मा का श्रद्धान, (२) स्व-पर का श्रद्धान, (३) जीवादि तत्त्वों का श्रद्धान तथा (४) सच्चे देव-शास्त्र-गुरु का श्रद्धान। दर्शनमोह की तीन और चारित्रमोह की अनन्तानुबन्धी क्रोध-मान-माया-लोभ मिलाकर कुल सात प्रकृतियों के उपशम-क्षय-क्षयोपशम से सम्यग्दर्शन प्रगट होता है, सम्यग्दर्शन के अलग-अलग अपेक्षाओं से अनेक प्रकार के भेद बताये गये हैं। उत्पत्ति की अपेक्षा दो भेद हैं — निसर्गज और अधिगमज। नयों की अपेक्षा दो भेद हैं — निश्चय सम्यग्दर्शन और व्यवहार सम्यग्दर्शन। राग के सद्भाव और अभाव की अपेक्षा सराग सम्यग्दर्शन और वीतराग सम्यग्दर्शन। कर्म की अपेक्षा तीन भेद हैं — उपशम सम्यग्दर्शन, क्षयोपशम सम्यग्दर्शन और क्षायिक सम्यग्दर्शन।

उत्तर — जिस गुण के प्रगट होने पर अपने शुद्ध आत्मा का प्रतिभास होता है, उसे **सम्यक्त्वगुण** कहते हैं।

प्रश्न १०७ — चारित्र किसे कहते हैं?

उत्तर — बाह्य और आभ्यन्तर क्रिया के निरोध से होनेवाली आत्मा की विशेष शुद्धि को **चारित्र** कहते हैं।[१]

प्रश्न १०८ — बाह्य क्रिया किसे कहते हैं?

उत्तर — हिंसा करना, झूठ बोलना, चोरी करना, मैथुन करना और परिग्रह सञ्चय करना आदि को बाह्य क्रिया कहते हैं।[२]

प्रश्न १०९ — आभ्यन्तर क्रिया किसे कहते हैं?

उत्तर — योग और कषाय को **आभ्यन्तर क्रिया** कहते हैं।

प्रश्न ११० — योग किसे कहते हैं?

उत्तर — मन-वचन-काय के निमित्त से आत्मा के प्रदेशों के चञ्चल होने को **योग** कहते हैं।

प्रश्न १११ — कषाय किसे कहते हैं?

उत्तर — क्रोध-मान-माया-लोभरूप आत्मा के विभाव परिणामों को **कषाय** कहते हैं।

प्रश्न ११२ — चारित्र के कितने भेद हैं?

उत्तर — चारित्र के **चार** भेद हैं — स्वरूपाचरणचारित्र, देशचारित्र, सकलचारित्र और यथाख्यातचारित्र।

१. ऐसे परिणामों को स्वरूपस्थिरता, निश्चलता, वीतरागता, साम्य, धर्म और चारित्र कहते हैं। जब आत्मा के चारित्रगुण की शुद्धपर्याय उत्पन्न होती है, तब बाह्य और आभ्यन्तरक्रिया का यथासम्भव निरोध हो जाता है।

(— लघु जैन सिद्धान्त प्रवेशिका, प्रश्न ९४)

२. यहाँ मुख्यरूप से बाह्य अशुभक्रियाओं का उल्लेख किया है, क्योंकि शुभ-क्रियाओं को व्यवहारनय से देशचारित्र और सकलचारित्र के रूप में माना जाता है; निश्चयचारित्र में तो शुभ और अशुभ दोनों क्रियाओं का निषेध हो जाता है।

प्रश्न ११३ – स्वरूपाचरणचारित्र किसे कहते हैं?

उत्तर – शुद्धात्मानुभवन से अविनाभावी विशेष चारित्र को **स्वरूपाचरणचारित्र** कहते हैं।[१]

प्रश्न ११४ – देशचारित्र किसे कहते हैं?

उत्तर – श्रावक के व्रतों (अणुव्रतों) को **देशचारित्र** कहते हैं।[२]

प्रश्न ११५ – सकलचारित्र किसे कहते हैं?

उत्तर – मुनियों को व्रतों (महाव्रतों) को **सकलचारित्र** कहते हैं।[३]

प्रश्न ११६ – यथाख्यातचारित्र किसे कहते हैं?

उत्तर – कषायों के सर्वथा अभाव से होनेवाली आत्मा की शुद्धि-विशेष को **यथाख्यातचारित्र** कहते हैं।

प्रश्न ११७ – सुख किसे कहते हैं?

उत्तर – आह्लादस्वरूप आत्मा के परिणाम-विशेष को **सुख** कहते हैं।

प्रश्न ११८ – वीर्य किसे कहते हैं?

उत्तर – आत्मा की शक्ति या बल को **वीर्य** कहते हैं।[१]

प्रश्न ११९ – भव्यत्वगुण किसे कहते हैं?

उत्तर – जिस शक्ति के कारण आत्मा में सम्यग्दर्शन-ज्ञान- चारित्र प्रगट होने की योग्यता रहती है, उसे **भव्यत्वगुण** कहते हैं।

प्रश्न १२० – अभव्यत्वगुण किसे कहते हैं?

उत्तर – जिस शक्ति के कारण आत्मा में सम्यग्दर्शन-ज्ञान -चारित्र प्रगट होने की योग्यता नहीं रहती है, उसे **अभव्यत्वगुण** कहते हैं।

प्रश्न १२१ – जीवत्वगुण किसे कहते हैं?

उत्तर – जिस शक्ति के कारण आत्मा प्राण धारण करता है, उसे **जीवत्वगुण** कहते हैं।[२]

प्रश्न १२२ – प्राण किसे कहते हैं?

उत्तर – जिनके संयोग से जीव जीवन अवस्था और वियोग से मरण अवस्था को प्राप्त होता है, उन्हें **प्राण** कहते हैं।

प्रश्न १२३ – प्राण के कितने भेद हैं?

उत्तर – प्राण के **दो** भेद हैं – द्रव्यप्राण और भावप्राण।

प्रश्न १२४ – द्रव्यप्राण के कितने भेद हैं?

उत्तर – द्रव्यप्राण के **दस** भेद हैं – मनबल, वचनबल, कायबल, स्पर्शन इन्द्रिय, रसना इन्द्रिय, घ्राण इन्द्रिय, चक्षु इन्द्रिय, कर्ण इन्द्रिय, श्वासोच्छ्वास और आयु।

---

१. सम्यक्त्व से अविनाभावी होने के कारण इसे व्यवहार से **सम्यक्त्वाचरणचारित्र** भी कहते हैं। यह चौथे गुणस्थान से ही अनन्तानुबन्धी कषाय के अभाव में प्रगट होता है। इसके सद्भाव में अष्ट अङ्गों का पालन; आठ शङ्कादि दोष, आठ मद, छह अनायतन और तीन मूढ़ताओं का त्याग होता है। जीव के भाव प्रशम, संवेग, अनुकम्पा और आस्तिक्य से युक्त होते हैं। **(– अष्टपाहुड़ चारित्रपाहुड़ के आधार पर)**

२. निश्चय सम्यग्दर्शनसहित अनन्तानुबन्धी तथा अप्रत्याख्यानावरण कषायों के अभावपूर्वक आत्मा में चारित्र की आंशिक शुद्धि प्रगट होती है, वह **निश्चय देशचारित्र** है। इस आंशिक शुद्धि के साथ श्रावकदशा में व्रतादिरूप शुभभाव होते हैं। वहाँ शुद्ध (निश्चय) देशचारित्र से धर्म होता है और व्यवहार व्रतादिक से शुभबन्ध होता है। निश्चयचारित्र के बिना सच्चा व्यवहारचारित्र भी नहीं हो सकता।

(– लघु जैन सिद्धान्त प्रवेशिका, प्रश्न ९८)

३. निश्चय सम्यग्दर्शनसहित चारित्रगुण की शुद्धि की वृद्धि होने से (अनन्तानुबन्धी आदि तीन कषायों के अभावपूर्वक) आत्मा में उत्पन्न होनेवाली (भावलिङ्गी मुनिपद के योग्य) विशेष शुद्धि को **सकलचारित्र** कहते हैं। मुनिपद में २८ मूलगुण आदि के शुभभाव होते हैं, उसे **व्यवहार सकलचारित्र** कहते हैं। **निश्चयचारित्र** आत्माश्रित होने से मोक्षमार्ग है, धर्म है और **व्यवहारचारित्र** पराश्रित होने से बन्धभाव है, मोक्षमार्ग नहीं।

---

१. वीर्यगुण की पर्याय को वीर्य या पुरुषार्थ कहते हैं।

२. जिस शक्ति के कारण आत्मा चैतन्यमात्र भावप्राण को धारण करता है, उसे **जीवत्वशक्ति** कहते हैं। **(– समयसार परिशिष्ट, ४७ शक्ति)**

प्रश्न १२५ — भावप्राण किसे कहते हैं?

उत्तर — आत्मा की जिस शक्ति के निमित्त से इन्द्रियादिक अपने कार्य में प्रवर्तते हैं, उसे **भावप्राण** कहते हैं।

प्रश्न १२६ — किस जीव के कितने प्राण होते हैं?

उत्तर — एकेन्द्रिय जीव के चार प्राण — स्पर्शन इन्द्रिय, कायबल, श्वासोच्छ्वास और आयु। **द्वीन्द्रिय जीव के छह प्राण —** पूर्वोक्त चार — स्पर्शन इन्द्रिय, कायबल, श्वासोच्छ्वास और आयु तथा रसना इन्द्रिय और वचनबल। **त्रीन्द्रिय जीव के सात प्राण —** पूर्वोक्त छह और घ्राण इन्द्रिय। **चतुरिन्द्रिय जीव के आठ प्राण —** पूर्वोक्त सात और एक चक्षु इन्द्रिय। **असैनी पञ्चेन्द्रिय जीव के नौ प्राण —** पूर्वोक्त आठ और एक कर्ण इन्द्रिय। **सैनी पञ्चेन्द्रिय जीव के दश प्राण —** पूर्वोक्त ९ और एक मनबल।

प्रश्न १२७ — भावप्राण के कितने भेद हैं?

उत्तर — भावप्राण के दो भेद हैं — भावेन्द्रिय और भावबल।

प्रश्न १२८ — भावेन्द्रिय के कितने भेद हैं?

उत्तर — भावेन्द्रिय के **पाँच** भेद हैं — स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और कर्ण।

प्रश्न १२९ — भावबल के कितने भेद हैं?

उत्तर — भावबल के **तीन** भेद हैं — मनोबल, वचनबल और कायबल।

प्रश्न १३० — वैभाविकगुण किसे कहते हैं?[१]

१. यह वैभाविकगुण जीव और पुद्गल — इन दो द्रव्यों में ही होता है। शेष चार द्रव्यों में यह गुण नहीं होता। मुक्तजीवों में इस गुण की शुद्ध स्वाभाविक पर्याय प्रगट हो जाती है। **(— लघु जैन सिद्धान्त प्रवेशिका, प्रश्न ११२ की पाद-टिप्पणी)**

उत्तर — जिस शक्ति के निमित्त से दूसरे द्रव्य का सम्बन्ध होने पर विभाव परिणति होती है, उसे **वैभाविकगुण** कहते हैं।[१]

१.८.५ जीव के प्रतिजीवी गुणों का विवेचन

प्रश्न १३१ — अव्याबाध प्रतिजीवी गुण किसे कहते हैं?

उत्तर — साता और असातारूप आकुलता (वेदनीयकर्म) के अभाव को **अव्याबाध प्रतिजीवी गुण** कहते हैं।

प्रश्न १३२ — अवगाह प्रतिजीवी गुण किसे कहते हैं?

उत्तर — परतन्त्रता (आयुकर्म) के अभाव को **अवगाह प्रतिजीवी गुण** कहते हैं।

प्रश्न १३३ — अगुरुलघुत्व प्रतिजीवी गुण किसे कहते हैं?

उत्तर — उच्चता और नीचता (गोत्रकर्म) के अभाव को **अगुरुलघुत्व प्रतिजीवी गुण** कहते हैं।

प्रश्न १३४ — सूक्ष्मत्व प्रतिजीवी गुण किसे कहते हैं?

उत्तर — इन्द्रियों के विषयरूप स्थूलता (नामकर्म) के अभाव को **सूक्ष्मत्व प्रतिजीवी गुण** कहते हैं।

।। इति प्रथमोऽध्याय: समाप्त:।।

१. **अप्यस्त्यनादिसिद्धस्य सत: स्वाभाविकी क्रिया।**
वैभाविकी क्रिया चास्ति पारिणामिकशक्तित:।।
न परं स्यात्परायत्ता सतो वैभाविकी क्रिया।
यस्मात्सतोऽसती शक्ति: कर्तुमन्यैर्न शक्यते।।

अर्थात् यद्यपि सत् अनादिसिद्ध है, तथापि वह परिणमनशील होने से उसकी दो प्रकार की क्रिया होती है — स्वाभाविकी क्रिया और वैभाविकी क्रिया। सत् की वैभाविकी क्रिया केवल पराधीन होती है — ऐसा नहीं है, क्योंकि जो शक्ति सत् की नहीं है, वह अन्य के द्वारा भी नहीं की जा सकती है। **(— पञ्चाध्यायी, उत्तरार्ध, श्लोक ६१,६२)**

द्रव्यपर्याय और गुणपर्याय

शङ्का – गुणों के समुदाय को द्रव्य कहते हैं, द्रव्य के इस लक्षण के अनुसार जितनी भी पर्यायें होती हैं, उन्हें गुणपर्याय कहना ही उचित है। पर्यायों के द्रव्यपर्याय और गुणपर्याय – ऐसे भेद करना उचित नहीं है?

समाधान – "उन अनन्त शक्तियों (गुणों में) के दो भेद हैं – १. क्रियावतीशक्ति और २. भाववतीशक्ति। प्रदेश अथवा देश-परिस्पन्द (चञ्चलता) को **क्रिया** कहते हैं और शक्तिविशेष को **भाव** कहते हैं। अर्थात् अनन्त गुणों में से प्रदेशवत्वगुण को **क्रियावतीशक्ति** कहते हैं और बाकी के गुणों को **भाववतीशक्ति** कहते हैं। इस प्रदेशवत्वगुण के परिणमन (पर्याय) को **द्रव्यपर्याय** कहते हैं, इसी का दूसरा नाम **व्यञ्जनपर्याय** है। शेष गुणों के परिणमन (पर्याय) को **गुणपर्याय** कहते हैं, इस ही का दूसरा नाम **अर्थपर्याय** है।"

द्रव्य में अंशकल्पना को पर्याय कहते हैं। वहाँ देशांशकल्पना को द्रव्यपर्याय और गुणांशकल्पना को गुणपर्याय कहते हैं। गुणपर्याय के दो भेद हैं – अर्थगुणपर्याय और व्यञ्जनगुणपर्याय।

अथवा 'ज्ञानादिक **भाववतीशक्ति** के विकार को **अर्थगुणपर्याय** कहते हैं और प्रदेशवत्त्वगुणरूप **क्रियावतीशक्ति** के विकार को **व्यञ्जनगुणपर्याय** कहते हैं। इस ही को **द्रव्यपर्याय** भी कहते हैं, क्योंकि **व्यञ्जनगुणपर्याय** द्रव्य के आकार को कहते हैं। यद्यपि यह आकार प्रदेशवत्त्वशक्ति का विकार है, इसलिए इसका मुख्यता से **प्रदेशवत्त्वगुण** से सम्बन्ध होने के कारण इसे **व्यञ्जनगुणपर्याय** ही कहना उचित है, तथापि गौणता से इसका देश के साथ भी सम्बन्ध है, इसलिए देशांश को **द्रव्यपर्याय** की उक्ति की तरह इसको भी **द्रव्यपर्याय** कह सकते हैं।'

– गुरुवर्य गोपालदास वरैया, **जैन सिद्धान्त दर्पण, पृष्ठ ५५,४०**

द्वितीय अध्याय

कर्म का स्वरूप

(दोहा)

कर्मस्वरूप को जानकर, अकर्मस्वभाव पहिचान।
अकर्तृत्व को भोगकर, भये सिद्ध भगवान।।

प्रश्न १३५ – जीव के कितने भेद हैं?

उत्तर – जीव के दो भेद हैं – संसारी और मुक्त।

प्रश्न १३६ – संसारी जीव किसे कहते हैं?

उत्तर – कर्मसहित जीव को **संसारी जीव** कहते हैं।

प्रश्न १३७ – मुक्त जीव किसे कहते हैं?

उत्तर – कर्मरहित जीव को **मुक्त जीव** कहते हैं।

प्रश्न १३८ – कर्म किसे कहते हैं?

उत्तर – जीव के राग-द्वेषादि परिणामों के निमित्त से जो कार्मण- वर्गणारूप पुद्गल-स्कन्ध जीव के साथ बन्ध को प्राप्त होते हैं, उन्हें **कर्म** कहते हैं।[१]

प्रश्न १३९ – कर्म-बन्ध के कितने भेद हैं?

उत्तर – कर्म-बन्ध के **चार** भेद हैं – प्रकृतिबन्ध, प्रदेशबन्ध, स्थितिबन्ध और अनुभागबन्ध।

प्रश्न १४० – चार प्रकार के कर्म-बन्ध के कारण क्या हैं?

---

१. कषायसहित जीव, कर्म के योग्य पुद्गलों को ग्रहण करता है, वह **कर्म-बन्ध** कहलाता है। **(–तत्त्वार्थसूत्र ८/२)**

उत्तर — योग से प्रकृति और प्रदेशबन्ध होते हैं तथा **कषाय** से स्थिति और अनुभागबन्ध होते हैं।[१]

२.१ प्रकृतिबन्ध

प्रश्न १४१ — प्रकृतिबन्ध किसे कहते हैं?

उत्तर — मोहादि-जनक तथा ज्ञानादि-घातक उस-उस स्वभाव-वाले कार्मण पुद्‌गल-स्कन्धों का आत्मा से सम्बन्ध होना, **प्रकृतिबन्ध** कहलाता है।

प्रश्न १४२ — प्रकृतिबन्ध या कर्म के कितने भेद हैं?

उत्तर — प्रकृतिबन्ध या कर्म के **आठ** भेद हैं — ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तरायकर्म। कर्म और प्रकृति एकार्थवाची हैं।

प्रश्न १४३ — ज्ञानावरणकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर — जो कर्म आत्मा के ज्ञानगुण को घातता है, उसे **ज्ञानावरणकर्म** कहते हैं।[२]

प्रश्न १४४ — ज्ञानावरणकर्म के कितने भेद हैं?

उत्तर — ज्ञानावरणकर्म के **पाँच** भेद हैं — मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण, अवधिज्ञानावरण, मनःपर्ययज्ञानावरण और केवल-ज्ञानावरणकर्म।

प्रश्न १४५ — दर्शनावरणकर्म किसे कहते हैं?[३]

१. मिथ्यादर्शन, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग — ये पाँच **कर्म-बन्ध के कारण** हैं। **(— तत्त्वार्थसूत्र ८/१)**

२-३. तत्त्वज्ञान आदि के सम्बन्ध में प्रदोष, निह्नव, मात्सर्य, अन्तराय, आसादन, उपघात आदि भाव ज्ञानावरण और दर्शनावरण के आस्रव हैं अर्थात् **ज्ञानावरण और दर्शनावरणकर्म का बन्ध** होता है। **(— तत्त्वार्थसूत्र ६/१०)**

उत्तर — जो कर्म आत्मा के दर्शनगुण को घातता है, उसे **दर्शनावरणकर्म** कहते हैं।

प्रश्न १४६ — दर्शनावरणकर्म के कितने भेद हैं?

उत्तर — दर्शनावरणकर्म के नौ भेद हैं — चक्षुदर्शनावरण, अचक्षुदर्शनावरण, अवधिदर्शनावरण, केवलदर्शनावरण, निद्रा, निद्रा-निद्रा, प्रचला, प्रचला-प्रचला और स्त्यानगृद्धिकर्म।

प्रश्न १४७ — वेदनीयकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर — जिस कर्म के फल में जीव को बाह्य सुख-दुःख की वेदना होती है अर्थात् जो कर्म निमित्तरूप से आत्मा के अव्याबाधगुण को घातता है, उसे **वेदनीयकर्म** कहते हैं।

प्रश्न १४८ — वेदनीयकर्म के कितने भेद हैं?

उत्तर — वेदनीयकर्म के दो भेद हैं — सातावेदनीय[१] और असातावेदनीयकर्म।[२]

प्रश्न १४९ — मोहनीयकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर — जो कर्म आत्मा के सम्यक्त्व और चारित्रगुण को घातता है, उसे **मोहनीयकर्म** कहते हैं।

प्रश्न १५० — मोहनीयकर्म के कितने भेद हैं?

उत्तर — मोहनीयकर्म के दो भेद हैं — दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीयकर्म।

१. संसारी जीवों और व्रतियों के प्रति अनुकम्पा, दान और सरागसंयम आदि-रूप योग, सहनशीलता, शौच आदि भावों से **सातावेदनीयकर्म का बन्ध** होता है। **(— तत्त्वार्थसूत्र ६/१)**

२. दुःख, शोक, ताप, चीखना, विलाप करना आदि भावों से **असातावेदनीयकर्म का बन्ध** होता है। **(— तत्त्वार्थसूत्र ६/११)**

प्रश्न १५१ — दर्शनमोहनीयकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर — जो कर्म आत्मा के सम्यक्त्वगुण को घातता है, उसे **दर्शनमोहनीयकर्म** कहते हैं।[१]

प्रश्न १५२ — दर्शनमोहनीयकर्म के कितने भेद हैं?

उत्तर — दर्शनमोहनीयकर्म के तीन भेद हैं — मिथ्यात्व, सम्यक्‌मिथ्यात्व और सम्यक्‌प्रकृतिकर्म।

प्रश्न १५३ — मिथ्यात्वकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर — जिस कर्म के उदय से जीव को अतत्त्वश्रद्धान होता है, उसे **मिथ्यात्वकर्म** कहते हैं।

प्रश्न १५४ — सम्यक्‌मिथ्यात्वकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर — जिस कर्म के उदय से जीव को मिश्रित परिणाम होता है अर्थात् जो परिणाम न तो सम्यक्त्वरूप होता है और न मिथ्यात्वस्वरूप होता है, उसे **सम्यक्‌मिथ्यात्वकर्म** कहते हैं।

प्रश्न १५५ — सम्यक्‌प्रकृति किसे कहते हैं?

उत्तर — जिस कर्म के उदय से सम्यक्त्वगुण का समूल घात तो नहीं होता, परन्तु चल-मल-अगाढ़ आदि दोष उत्पन्न होते हैं, उसे **सम्यक्‌प्रकृति** कहते हैं।

प्रश्न १५६ — चारित्रमोहनीयकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर — जो कर्म आत्मा के चारित्रगुण को घातता है, उसे **चारित्रमोहनीयकर्म** कहते हैं।[२]

---

१. केवली, श्रुत, संघ, देव आदि का अवर्णवाद करने से **दर्शनमोहनीयकर्म का बन्ध** होता है। **(— तत्त्वार्थसूत्र ६/१३)**

२. कषाय के उदय से तीव्र परिणाम होनेपर **चारित्रमोहनीयकर्म का बन्ध** होता है। **(— तत्त्वार्थसूत्र ६/१४)**

प्रश्न १५७ — चारित्रमोहनीयकर्म के कितने भेद हैं?

उत्तर — चारित्रमोहनीयकर्म के **दो** भेद है — कषायवेदनीय और नोकषायवेदनीयकर्म।[१]

प्रश्न १५८ — कषायवेदनीय के कितने भेद हैं?

उत्तर — कषायवेदनीय के **सोलह** भेद हैं — अनन्तानुबन्धी क्रोध, अनन्तानुबन्धी मान, अनन्तानुबन्धी माया और अनन्तानुबन्धी लोभ; अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, अप्रत्याख्यानावरण मान, अप्रत्याख्यानावरण माया और अप्रत्याख्यानावरण लोभ; प्रत्याख्यानावरण क्रोध, प्रत्याख्यानावरण मान, प्रत्याख्यानावरण माया और प्रत्याख्यानावरण लोभ; तथा संज्वलन क्रोध, संज्वलन मान, संज्वलन माया और संज्वलन लोभ।

प्रश्न १५९ — नोकषायवेदनीय के कितने भेद हैं?

उत्तर — नोकषायवेदनीय के **नौ** भेद हैं — हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद और नपुंसकवेद।

प्रश्न १६० — अनन्तानुबन्धी क्रोध-मान-माया-लोभ किन्हें कहते हैं?

उत्तर — जो कर्म, आत्मा के स्वरूपाचरणचारित्र परिणाम को घातते हैं, उन्हें **अनन्तानुबन्धी क्रोध-मान-माया-लोभ** कहते हैं।

---

१. यहाँ वेदनीय शब्द से यह नहीं समझना चाहिए कि यह वेदनीयकर्म का भेद है, बल्कि यहाँ चारित्रमोहनीयकर्म के ही दो भेदों के नाम कषायवेदनीय और नोकषाय-वेदनीय हैं अर्थात् जिस कर्म के उदय से जीव कषाय का वेदन करता है, वह कषायवेदनीय है तथा जिस कर्म के उदय से जीव नोकषाय का वेदन करता है, वह नोकषायवेदनीय है। ये चारित्रमोहनीयकर्म के भेद हैं। **(— धवला १३/५,५,९४/३५९)**

प्रश्न १६१ — अप्रत्याख्यानावरण क्रोध-मान-माया-लोभ किन्हें कहते हैं?

उत्तर — जो कर्म, आत्मा के देशचारित्र परिणाम को घातते हैं, उन्हें **अप्रत्याख्यानावरण क्रोध-मान-माया-लोभ** कहते हैं।

प्रश्न १६२ — प्रत्याख्यानावरण क्रोध-मान-माया-लोभ किन्हें कहते हैं?

उत्तर — जो कर्म, आत्मा के सकलचारित्र परिणाम को घातते हैं, उन्हें **प्रत्याख्यानावरण क्रोध-मान-माया-लोभ** कहते हैं।

प्रश्न १६३ — संज्वलन क्रोध-मान-माया-लोभ और नोकषाय किन्हें कहते हैं?

उत्तर — जो कर्म, आत्मा के यथाख्यातचारित्र परिणाम को घातते हैं, उन्हें **संज्वलन क्रोध-मान-माया-लोभ और नोकषाय** कहते हैं।[१]

प्रश्न १६४ — आयुकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर — जो कर्म आत्मा को नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देव के शरीर में रोककर रखता है, उसे **आयुकर्म** कहते हैं अर्थात् आयुकर्म आत्मा के **अवगाहनगुण** को घातता है।

प्रश्न १६४ — आयुकर्म के कितने भेद हैं?

उत्तर — आयुकर्म के **चार** भेद हैं — नरकायु[२], तिर्यञ्चायु[३],

१. यद्यपि संज्वलन कषाय और नोकषाय में अन्तर है, तथापि दोनों का अभाव साथ-साथ होता है तथा यथाख्यातचारित्र को घातने की अपेक्षा दोनों में समानता है; अत: इन्हें साथ-साथ लिया गया है।

२. बहुत आरम्भ और बहुत परिग्रह के भाव से **नरकायु का बन्ध** होता है। **(— तत्त्वार्थसूत्र ६/१५)**

३. माया या छलकपट के भाव से **तिर्यञ्चायु का बन्ध** होता है। **(— तत्त्वार्थसूत्र ६/१६)**

मनुष्यायु[१] और देवायु[२]।

प्रश्न १६६ — नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर — जो कर्म जीव को गति आदि अनेक प्रकार से परिणमाता है अथवा शरीरादिक बनाता है, उसे **नामकर्म** कहते हैं अर्थात् नामकर्म आत्मा के **सूक्ष्मत्वगुण** को घातता है।[३]

प्रश्न १६७ — नामकर्म के कितने भेद हैं?

उत्तर — नामकर्म के **तिरानवैं (९३)** भेद हैं — **चार** गति (नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देव); **पाँच** जाति (एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय); **पाँच** शरीर (औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस और कार्मण); **तीन** अङ्गोपाङ्ग (औदारिक, वैक्रियिक और आहारक); **एक** निर्माण; **पाँच** बन्धन (औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस और कार्मण); **पाँच** संघात (औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस और कार्मण); **छह** संस्थान (समचुतरस्र, न्यग्रोधपरिमण्डल, स्वाति, कुब्जक, वामन और हुण्डक); **छह** संहनन (वज्रवृषभनाराच, वज्रनाराच, नाराच, अर्द्धनाराच, कीलक, असंप्राप्तासृपाटिका); **पाँच** वर्ण (काला, पीला, नीला, लाल और सफेद); **दो** गन्ध (सुगन्ध और दुर्गन्ध); **पाँच** रस (खट्टा, मीठा, चरपरा, कडुआ और कषायला); **आठ**

१. अल्प आरम्भ और अल्प परिग्रह के भाव तथा स्वभाविक सरल परिणाम से **मनुष्यायु का बन्ध** होता है। **(— तत्त्वार्थसूत्र ६/१७-१८)**

२. सरागसंयम, संयमासंयम, सम्यग्दर्शन, अकामनिर्जरा और बालतप के भाव से **देवायु का बन्ध** होता है। **(— तत्त्वार्थसूत्र ६/२०-२१)**

३. नामकर्म के मुख्यत: दो भेद हैं — शुभनामकर्म और अशुभनामकर्म। मन-वचन-काय के योगों में कुटिलता और विसंवादन के भाव से **अशुभनामकर्म का बन्ध** होता है तथा इनसे विपरीतभाव से **शुभनामकर्म का बन्ध** होता है। **(— तत्त्वार्थसूत्र ६/२२-२३)**

स्पर्श (हलका, भारी; रूखा, चिकना; ठण्डा, गरम; कठोर और नरम); **चार** आनुपूर्व्य (नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देव); **एक** अगुरुलघु; **एक** उपघात; **एक** परघात; **एक** आतप; **एक** उद्योत; **दो** विहायोगति (प्रशस्त और अप्रशस्त); **एक** उच्छ्वास; **एक** त्रस; **एक** स्थावर; **एक** बादर; **एक** सूक्ष्म; **एक** पर्याप्त; **एक** अपर्याप्त; **एक** प्रत्येक; **एक** साधारण; **एक** स्थिर; **एक** अस्थिर; **एक** शुभ; **एक** अशुभ; **एक** सुभग; **एक** दुर्भग; **एक** सुस्वर; **एक** दुःस्वर; **एक** आदेय; **एक** अनादेय; **एक** यशःकीर्ति; **एक** अयशःकीर्ति और **एक** तीर्थङ्कर नामकर्म।

प्रश्न १६८ — गति नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर — जो कर्म, जीव का आकार नारकी, तिर्यञ्च, मनुष्य और देव के समान बनाता है, उसे **गति नामकर्म** कहते हैं।

प्रश्न १६९ — जाति किसे कहते हैं?

उत्तर — अव्यभिचारी सदृशता के कारण एकरूपता धारण करनेवाले विशेष को **जाति** कहते हैं अर्थात् जाति के द्वारा सदृश धर्मवाले पदार्थों का ग्रहण होता है।

प्रश्न १७० — जाति नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर — जिस कर्म के उदय से जीव एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय होता है, उसे **जाति नामकर्म** कहते हैं।

प्रश्न १७१ — शरीर नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर — जिस कर्म के उदय से जीव के साथ औदारिक आदि शरीर की रचना होती है, उसे **शरीर नामकर्म** कहते हैं।

प्रश्न १७२ — अङ्गोपाङ्ग नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर — जिस कर्म के उदय से शरीर के हाथ, पैर आदि अङ्ग एवं नासिका आदि उपाङ्ग बनते हैं, उन्हें **अङ्गोपाङ्ग नामकर्म** कहते हैं।

प्रश्न १७३ — निर्माण नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर — जिस कर्म के उदय से शरीर के अङ्गोपाङ्गों की ठीक-ठीक रचना होती है, उसे **निर्माण नामकर्म** कहते हैं।

प्रश्न १७४ — बन्धन नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर — जिस कर्म के उदय से औदारिक आदि शरीरों के परमाणु परस्पर सम्बन्ध को प्राप्त होते हैं, उसे **बन्धन नामकर्म** कहते हैं।

प्रश्न १७५ — संघात नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर — जिस कर्म के उदय से औदारिक आदि शरीरों के परमाणु छिद्ररहित एकता को प्राप्त होते हैं, उसे **संघात नामकर्म** कहते हैं।

प्रश्न १७६ — संस्थान नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर — जिस कर्म के उदय से शरीर की आकृति बनती है, उसे **संस्थान नामकर्म** कहते हैं।

प्रश्न १७७ — समचतुरस्र संस्थान किसे कहते हैं?

उत्तर — जिस कर्म के उदय से जीव के शरीर की आकृति कुशल शिल्पकार के द्वारा बनायी गयी सुन्दर मूर्ति के समान ऊपर, नीचे तथा बीच में समभाग या समानुपात में होती है, उसे **समचतुरस्र संस्थान** कहते हैं।

प्रश्न १७८ — न्यग्रोधपरिमण्डल संस्थान किसे कहते हैं?

उत्तर — जिस कर्म के उदय से जीव का शरीर वटवृक्ष की तरह होता है अर्थात् जिसके नाभि से नीचे के अङ्ग पतले और छोटे और उसके ऊपर के अङ्ग मोटे और बड़े होते हैं, उसे **न्यग्रोधपरिमण्डल संस्थान** कहते हैं।

प्रश्न १७९ — स्वाति संस्थान किसे कहते हैं?

उत्तर — जिस कर्म के उदय से जीव का शरीर शाल्मलिवृक्ष के समान होता है अर्थात् जिसके नाभि से नीचे के अङ्ग मोटे और बड़े और उसके ऊपर के अङ्ग पतले और छोटे होते हैं, उसे **स्वाति संस्थान** कहते हैं।

प्रश्न १८० — कुब्जक संस्थान किसे कहते हैं?

उत्तर — जिस कर्म के उदय से जीव का शरीर कुबड़ा होता है, उसे **कुब्जक संस्थान** कहते हैं।

प्रश्न १८१ — वामन संस्थान किसे कहते हैं?

उत्तर — जिस कर्म के उदय से जीव का शरीर बौना होता है, उसे **वामन संस्थान** कहते हैं।

प्रश्न १८२ — हुण्डक संस्थान किसे कहते हैं?

उत्तर — जिस कर्म के उदय से जीव का शरीर के अङ्गोपाङ्ग विषम आकृतिवाले हुण्ड के समान होते हैं अर्थात् किसी खास आकृतिवाले नहीं होते हैं, उसे **हुण्डक संस्थान** कहते हैं।

प्रश्न १८३ — संहनन नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर — जिस कर्म के उदय से शरीर की हड्डियों का बन्धन विशेष होता है, उसे **संहनन नामकर्म** कहते हैं।

प्रश्न १८४ — वज्रवृषभनाराच संहनन किसे कहते हैं?

उत्तर — जिस कर्म के उदय से शरीर में वज्रमय हड्डियाँ, वज्रमय वेष्टन और वज्रमय कीलियाँ होती हैं, उसे **वज्रवृषभनाराच संहनन** कहते हैं।

प्रश्न १८५ — वज्रनाराच संहनन किसे कहते हैं?

उत्तर — जिस कर्म के उदय से शरीर में वज्रमय हड्डियाँ और वज्रमय कीलियाँ होती हैं, परन्तु वेष्टन व्रजमय नहीं होते, उसे **वज्रनाराच संहनन** कहते हैं।

प्रश्न १८६ — नाराच संहनन किसे कहते हैं?

उत्तर — जिस कर्म के उदय से शरीर में वज्रमय विशेषण से रहित हड्डियाँ, वेष्टन और कीलियाँ होती हैं, उसे **नाराच संहनन** कहते हैं।

प्रश्न १८७ — अर्द्धनाराच संहनन किसे कहते हैं?

उत्तर — जिस कर्म के उदय से शरीर में हड्डियों की सन्धियाँ अर्द्धकीलित होती हैं, उसे **अर्धनाराच संहनन** कहते हैं।

प्रश्न १८८ — कीलक संहनन किसे कहते हैं?

उत्तर — जिस कर्म के उदय से हड्डियाँ परस्पर कीलित होती हैं, उसे **कीलक संहनन** कहते हैं।

प्रश्न १८९ — असम्प्राप्तासृपाटिका संहनन किसे कहते हैं?

उत्तर — जिस कर्म के उदय से शरीर में हड्डियाँ मात्र माँस, स्नायु आदि से लपेटकर संघटित की गयी होती हैं, उसे **असम्प्राप्तासृपाटिका संहनन** कहते हैं।

प्रश्न १९० — वर्ण नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर — जिस कर्म के उदय से शरीर में रङ्ग होता है, उसे **वर्ण नामकर्म** कहते हैं।

प्रश्न १९१ — गन्ध नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर — जिस कर्म के उदय से शरीर में गन्ध होती है, उसे **गन्ध नामकर्म** कहते हैं।

प्रश्न १९२ — रस नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर — जिस कर्म के उदय से शरीर में रस होता है, उसे **रस नामकर्म** कहते हैं।

प्रश्न १९३ — स्पर्श नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर — जिस कर्म के उदय से शरीर में स्पर्श होता है, उसे **स्पर्श नामकर्म** कहते हैं।

प्रश्न १९४ — आनुपूर्वी नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर — जिस कर्म के उदय से **विग्रहगति**[१] में आत्मा के प्रदेशों का आकार पूर्व शरीर के आकार का रहता है, उसे **आनुपूर्वी नामकर्म** कहते हैं।[२]

प्रश्न १९५ — अगुरुलघु नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर — जिस कर्म के उदय से शरीर, लोहे के गोले के समान भारी और आकवृक्ष के फूल के समान हलका नहीं होता है, उसे **अगुरुलघु नामकर्म** कहते हैं।

प्रश्न १९६ — उपघात नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर — जिस कर्म के उदय से शरीर में अपना ही घात करनेवाले अङ्गोपाङ्ग होते हैं, उसे **उपघात नामकर्म** कहते हैं।

प्रश्न १९७ — परघात नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर — जिस कर्म के उदय से शरीर में दूसरे का घात करनेवाले अङ्गोपाङ्ग होते हैं, उसे **परघात नामकर्म** कहते हैं।

प्रश्न १९८ — आतप नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर — जिस कर्म के उदय से शरीर में सूर्य के समान आतप (उष्णता) की प्राप्ति होती है, उसे **आतप नामकर्म** कहते हैं।

---

१. प्रश्न क्रमाङ्क २३८ देखें।

२. जिस कर्म के उदय से जीव का इच्छित गति में गमन होता है, उसे **आनुपूर्वी नामकर्म** कहते हैं। **(— धवला ६/१,९.१,२८/५६)**

प्रश्न १९९ — उद्योत नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर — जिस कर्म के उदय से शरीर में उद्योत होता है, उसे **उद्योत नामकर्म** कहते हैं।

प्रश्न २०० — विहायोगति नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर — जिस कर्म के उदय से जीवों का आकाश में गमन होता है, उसे **विहायोगति नामकर्म** कहते हैं। विहायोगति कर्म के प्रशस्त और अप्रशस्त — ऐसे दो भेद होते हैं।

प्रश्न २०१ — उच्छ्वास नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर — जिस कर्म के उदय से शरीर में श्वासोच्छ्वास होता है, उसे **उच्छ्वास नामकर्म** कहते हैं।

प्रश्न २०२ — त्रस नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर — जिस कर्म के उदय से द्वीन्द्रिय आदि पर्यायों में जन्म होता है, उसे **त्रस नामकर्म** कहते हैं।[१]

प्रश्न २०३ — स्थावर नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर — जिस कर्म के उदय से पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति पर्याय में जन्म होता है, उसे **स्थावर नामकर्म** कहते हैं।[२]

प्रश्न २०४ — पर्याप्ति अथवा पर्याप्त नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर — जिसके कर्म के उदय से अपने-अपने योग्य आहार आदि पर्याप्तियाँ पूर्ण होती है, अथवा जिस कर्म के उदय से जीव

---

१. जिस कर्म के उदय से जीव का गमन-आगमन भाव होता है, उसे **त्रस नामकर्म** कहते हैं। **(— धवला १३/५,५,१०१/३६५)**

२. जिस कर्म के उदय से जीव स्थावरपने को प्राप्त होता है, उसे **स्थावर नामकर्म** कहते हैं। **(— धवला ६/१,९.१,२८/६१)**

पर्याप्त होता है, उसे **पर्याप्ति अथवा पर्याप्त नामकर्म** कहते हैं।

प्रश्न २०५ – पर्याप्ति किसे कहते हैं?

उत्तर – आहारवर्गणा, भाषावर्गणा और मनोवर्गणा के परमाणुओं को आहार, शरीर, इन्द्रिय आदिरूप परिणमित कराने की जीव की शक्ति की पूर्णता को **पर्याप्ति** कहते हैं।

प्रश्न २०६ – पर्याप्तियों के कितने भेद हैं?

उत्तर – पर्याप्तियों के छह भेद हैं –

१. आहारपर्याप्ति – आहारवर्गणा के परमाणुओं को खल और रसभागरूप परिणमित कराने के कारणभूत जीव की शक्ति की पूर्णता को **आहारपर्याप्ति** कहते हैं।

२. शरीरपर्याप्ति – जिन परमाणुओं को खलभागरूप परिणमित किया था, उनसे हड्डी आदि कठिन अवयवरूप और जिनको रसभागरूप परिणमित किया था, उनसे रुधिर आदि द्रवरूप परिणमित कराने के कारणभूत जीव की शक्ति की पूर्णता को **शरीरपर्याप्ति** कहते हैं।

३. इन्द्रियपर्याप्ति – आहारवर्गणा के परमाणुओं को इन्द्रिय के आकाररूप परिणमित कराने तथा इन्द्रिय द्वारा विषय-ग्रहण करने के कारणभूत जीव की शक्ति की पूर्णता को **इन्द्रियपर्याप्ति** कहते हैं।

४. श्वासोच्छ्वासपर्याप्ति – आहारवर्गणा के परमाणुओं को श्वासोच्छ्वासरूप परिणमित कराने के कारणभूत जीव की शक्ति की पूर्णता को **श्वासोच्छ्वासपर्याप्ति** कहते हैं।

५. भाषापर्याप्ति – भाषावर्गणा के परमाणुओं को वचनरूप परिणमित कराने के कारणभूत जीव की शक्ति की पूर्णता को **भाषा - पर्याप्ति** कहते हैं।

६. मन:पर्याप्ति – मनोवर्गणा के परमाणुओं को हृदयस्थान में आठ पाँखुरी के कमलाकार मनरूप परिणमित कराने को तथा उसके द्वारा यथावत् विचार करने को कारणभूत जीव की शक्ति की पूर्णता को **मन:पर्याप्ति** कहते हैं।

एकेन्द्रिय जीवों में भाषा और मन के बिना चार पर्याप्तियाँ होती हैं। द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीवों में मन के बिना पाँच पर्याप्तियाँ होती हैं। संज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीवों में सभी छह पर्याप्तियाँ होती हैं। इन सब पर्याप्तियों के पूर्ण होने का काल अन्तर्मुहूर्त है; वहाँ एक-एक पर्याप्ति के पूर्ण होने का काल भी अन्तर्मुहूर्त है और सबका मिलकर भी अन्तर्मुहूर्त है। तथा पहले से दूसरे का, दूसरे से तीसरे का, इसी तरह छठवीं पर्याप्ति तक का काल, क्रम से बड़ा-बड़ा अन्तर्मुहूर्त है। अपने-अपने योग्य पर्याप्तियों का प्रारम्भ तो एक साथ होता है, किन्तु पूर्णता क्रम से होती है।

जब तक किसी जीव की शरीर-पर्याप्ति पूर्ण तो न हो, लेकिन नियम से पूर्ण होनेवाली हो, तब तक उस जीव को **निर्वृत्त्यपर्याप्तक** कहते हैं। जिसकी शरीर-पर्याप्ति पूर्ण हो, उसे **पर्याप्तक** कहते हैं।

प्रश्न २०७ – अपर्याप्ति, अपर्याप्त अथवा लब्ध्यपर्याप्त नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर – जिस कर्म के उदय से जीव एक भी पर्याप्ति पूर्ण न करके, श्वास के अठारहवें भागप्रमाण अन्तर्मुहूर्त काल में ही मरण को प्राप्त होते हैं, उसे **अपर्याप्ति, अपर्याप्त अथवा लब्ध्यपर्याप्त** नामकर्म कहते हैं।

प्रश्न २०८ – प्रत्येक नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर — जिस कर्म के उदय से एक शरीर का एक ही जीव स्वामी हो, उसे **प्रत्येक नामकर्म** कहते हैं।

प्रश्न २०९ — साधारण नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर — जिस कर्म के उदय से एक शरीर के अनेक जीव स्वामी हों, उसे **साधारण नामकर्म** कहते हैं?

प्रश्न २१० (अ) — स्थिर नामकर्म किसे कहते हैं।

उत्तर — जिस कर्म के उदय से शरीर के धातु और उपधातु अपने-अपने स्थान पर रहते हैं, उसे **स्थिर नामकर्म** कहते हैं।

प्रश्न २१०(ब) — अस्थिर नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर — जिस कर्म के उदय से शरीर के धातु और उपधातु अपने-अपने स्थान पर नहीं रहते हैं, उसे **अस्थिर नामकर्म** कहते हैं।

प्रश्न २११ — शुभ नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर — जिस कर्म के उदय से शरीर के अवयव सुन्दर (शोभन) होते हैं, उसे **शुभ नामकर्म** कहते हैं।

प्रश्न २१२ — अशुभ नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर — जिस कर्म के उदय से शरीर के अवयव असुन्दर (अशोभन) होते हैं, उसे **अशुभ नामकर्म** कहते हैं।

प्रश्न २१३ — सुभग नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर — जिस कर्म के उदय से दूसरे जीव अपने से (मुझसे) प्रीति करते हैं, उसे **सुभग नामकर्म** कहते हैं।

प्रश्न २१४ — दुर्भग नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर — जिस कर्म के उदय से दूसरे जीव अपने से (मुझसे) अप्रीति करते हैं, उसे **दुर्भग नामकर्म** कहते हैं।

प्रश्न २१५ — सुस्वर नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर — जिस कर्म के उदय से स्वर अच्छा होता है, उसे **सुस्वर नामकर्म** कहते हैं।

प्रश्न २१६ — दु:स्वर नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर — जिस कर्म के उदय से स्वर अच्छा नहीं होता है, उसे **दु:स्वर नामकर्म** कहते हैं।

प्रश्न २१७ — आदेय नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर — जिस कर्म के उदय से कान्तिमान शरीर उत्पन्न होता है, उसे **आदेय नामकर्म** कहते हैं।

प्रश्न २१८ — अनादेय नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर — जिस कर्म के उदय से कान्तिमान शरीर नहीं होता है, उसे **अनादेय नामकर्म** कहते हैं।[१]

प्रश्न २१९ — यश:कीर्ति नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर — जिस कर्म के उदय से संसार में जीव की प्रशंसा होती है, उसे **यश:कीर्ति नामकर्म** कहते हैं।

प्रश्न २२० — अयश:कीर्ति नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर — जिस कर्म के उदय से संसार में जीव की प्रशंसा नहीं होती है, उसे **अयश:कीर्ति नामकर्म** कहते हैं।

प्रश्न २२१ — तीर्थङ्कर नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर — जिस कर्म के उदय से तीर्थङ्कर पद प्राप्त होता है, उसे

---

१. अथवा जिस कर्म के उदय से संसारी जीवों के बहुमान्यता उत्पन्न होती है, उसे **आदेय नामकर्म** कहते हैं। उससे विपरीतभाव को उत्पन्न करनेवाला **अनादेय नामकर्म** है। **(— धवला ६/१,९.१,२८/६५)**

तीर्थङ्कर नामकर्म कहते हैं।[१]

प्रश्न २२२ – गोत्रकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर – जिस कर्म के उदय से उच्च, नीच गोत्र या कुल का व्यवहार होता है, उसे **गोत्रकर्म** कहते हैं।

प्रश्न २२३ – गोत्रकर्म के कितने भेद हैं?

उत्तर – गोत्रकर्म के **दो** भेद हैं – उच्च गोत्र और नीच गोत्रकर्म।

---

१. दर्शनविशुद्धि, विनय-सम्पन्नता, शील और व्रतों का निरतिचार पालन, अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग, संवेग, शक्ति के अनुसार त्याग, शक्ति के अनुसार तप, साधु-समाधि, वैयावृत्य, अर्हद्-भक्ति, आचार्य-भक्ति, उपाध्याय-भक्ति, प्रवचन-भक्ति, आवश्यकों का दृढ़ता से पालन, मार्ग-प्रभावना, और प्रवचन वात्सल्य – इन सोलहकारण भावनाओं को विशेषतया भाने से **तीर्थङ्कर नामकर्म का बन्ध** होता है – यह प्रकृति एक बार बँधना शुरु होने पर निरन्तर बँधती रहती है। **(– तत्त्वार्थसूत्र ६/२४)**

जो धर्मतीर्थ अर्थात् मोक्षमार्ग का उपदेश देते हैं, समवसरण आदि विभूतियों से सहित होते हैं और जिनके तीर्थङ्कर नामकर्म का उदय होता है, उन्हें **तीर्थङ्कर** कहते हैं। **(– बालबोध पाठमाला, भाग १, पाठ ३)**

भरत और ऐरावतक्षेत्र के चतुर्थकाल में २४ तीर्थङ्कर होते हैं तथा विदेहक्षेत्र में सदाकाल कम से कम २० और अधिक से अधिक १६० तीर्थङ्कर होते हैं। वर्तमान चौबीसी के अजितनाथ तीर्थङ्कर के समय एकसाथ १७० तीर्थङ्कर हुए थे अर्थात् ढाईद्वीप में कुल पाँच भरतक्षेत्र, पाँच ऐरावतक्षेत्र और पाँच विदेहक्षेत्रों के १६० नगरों में सभी जगह एक-एक तीर्थङ्कर थे। भरत और ऐरावतक्षेत्र के तीर्थङ्कर पाँच कल्याणकवाले ही होते हैं, जबकि विदेहक्षेत्र के तीर्थङ्कर दो, तीन या पाँच कल्याणकवाले होते हैं। भरत-ऐरावतक्षेत्र के तीर्थङ्करों के चार अनन्त चतुष्टय के साथ ४२ बाह्य गुण होते हैं। प्रत्येक तीर्थङ्कर का शासन चलता है, अत: ये आप्त भी कहलाते हैं। तीर्थङ्कर जन्म से ही तीन ज्ञान के धारी होते हैं। आगम को भी तीर्थ कहा जाता है, उसके मूलग्रन्थकर्ता तीर्थङ्कर भगवान ही कहलाते हैं। तीर्थङ्करों का आहार तो होता है, परन्तु निहार नहीं होता; उनके दाढ़ी-मूछ नहीं होती, परन्तु शिर पर बाल होते हैं। उनका शरीर निगोद से रहित होता है। एक स्थान पर दो तीर्थङ्कर एक साथ कभी नहीं होते। **(– जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश, भाग २, पृष्ठ ३७३)**

प्रश्न २२४ – उच्च गोत्रकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर – जिस कर्म के उदय से लोकमान्य गोत्र या कुल में जन्म होता है, उसे **उच्च गोत्रकर्म** कहते हैं।[१]

प्रश्न २२५ – नीच गोत्रकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर – जिस कर्म के उदय से लोकनिन्द्य गोत्र या कुल में जन्म होता है, उसे **नीच गोत्रकर्म** कहते हैं।[२]

प्रश्न २२६ – अन्तरायकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर – जिस कर्म के उदय से दान आदि में विघ्न होता है, उसे **अन्तरायकर्म** कहते हैं।[३]

प्रश्न २२७ – अन्तरायकर्म के कितने भेद हैं?

उत्तर – अन्तरायकर्म के पाँच भेद हैं – दानान्तराय, लाभान्तराय, भोगान्तराय, उपभोगान्तराय और वीर्यान्तराय कर्म।

प्रश्न २२८ – पुण्यकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर – जिस कर्म के उदय से जीव को इष्ट वस्तु की प्राप्ति होती है, उसे **पुण्यकर्म** कहते हैं।

प्रश्न २२९ – पापकर्म किसे कहते हैं?

---

१. दूसरे की प्रशंसा और अपनी निन्दा, दूसरे के गुणों को प्रगट करने और अपने गुणों को छिपाने के भावों से तथा विनम्रता और मद के अभाव से **उच्च गोत्रकर्म का बन्ध** होता है। **(– तत्त्वार्थसूत्र ६/२६)**

२. दूसरों की निन्दा और अपनी प्रशंसा, दूसरे के विद्यमान गुणों को छिपाने और अपने अप्रगट गुणों को प्रगट करने के भावों से **नीच गोत्रकर्म का बन्ध** होता है। **(– तत्त्वार्थसूत्र ६/२७)**

३. दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य में विघ्न करने के भाव से **अन्तरायकर्म का बन्ध** होता है। **(– तत्त्वार्थसूत्र ६/२७)**

उत्तर — जिस कर्म के उदय से जीव को अनिष्ट वस्तु की प्राप्ति होती है, उसे **पापकर्म** कहते हैं।

प्रश्न २३० — घातिकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर — जो कर्म, जीव के ज्ञान आदि अनुजीवी गुणों को घातते हैं, उन्हें **घातिकर्म** कहते हैं।

प्रश्न २३१ — अघातिकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर — जो कर्म, जीव के ज्ञान आदि अनुजीवी गुणों को नहीं घातते हैं, उन्हें **अघातिकर्म** कहते हैं।

प्रश्न २३२ — सर्वघातिकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर — जो कर्म, जीव के अनुजीवी गुणों को पूर्णतया घातते हैं, उन्हें **सर्वघातिकर्म** कहते हैं। कर्म या प्रकृति एकार्थवाची हैं। जैसे — सर्वघातिकर्म या सर्वघातिप्रकृति।

प्रश्न २३३ — देशघातिकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर — जो कर्म, जीव के अनुजीवी गुणों को एकदेश घातते हैं, उन्हें **देशघातिकर्म** कहते हैं।

प्रश्न २३४ — जीव-विपाकीकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर — जिन कर्मों का फल जीव में होता है, उन्हें **जीव-विपाकीकर्म** कहते हैं।

प्रश्न २३५ — पुद्गल-विपाकीकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर — जिन कर्मों का फल पौद्गलिक शरीर आदि में होता है, उन्हें **पुद्गल-विपाकीकर्म** कहते हैं।

प्रश्न २३६ — भव-विपाकीकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर — जिन कर्मों के फल से जीव नरक आदि भवों में रुकता है, उन्हें **भव-विपाकीकर्म** कहते हैं।

प्रश्न २३७ — क्षेत्र-विपाकीकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर — जिन कर्मों के फल से विग्रहगति में जीव का आकार पूर्व भव के समान बना रहता है, उन्हें **क्षेत्र-विपाकीकर्म** कहते हैं।

प्रश्न २३८ — विग्रहगति किसे कहते हैं?

उत्तर — एक शरीर को छोड़कर दूसरा शरीर ग्रहण करने के लिए जीव का जो गमन होता है, उसे **विग्रहगति** कहते हैं।

प्रश्न २३९ — घातिकर्म कितने और कौन-कौनसे हैं?

उत्तर — घातिकर्म **सैंतालीस** हैं — ज्ञानावरण-५, दर्शनावरण-९, मोहनीय-२८ और अन्तराय-५ = कुल ४७ **घातिकर्म**।

प्रश्न २४० — अघातिकर्म कितने और कौन-कौनसे हैं?

उत्तर — अघातिकर्म **एक सौ एक** हैं — वेदनीय-२, आयु-४, नाम-९३ और गोत्र-२।

प्रश्न २४१ — सर्वघाति प्रकृतियाँ कितनी और कौन-कौनसी हैं?

उत्तर — सर्वघातिकर्म या प्रकृतियाँ **इक्कीस** हैं — ज्ञानावरण-१ (केवलज्ञानावरण); दर्शनावरण-६ (केवलदर्शनावरण एक और निद्रा आदि पाँच); मोहनीय-१४ (अनन्तानुबन्धी-४, अप्रत्याख्यानावरण-४, प्रत्याख्यानावरण-४, मिथ्यात्व-१ और सम्यक्-मिथ्यात्व-१)।

प्रश्न २४२ — देशघाति प्रकृतियाँ कितनी और कौन-कौनसी हैं?

उत्तर — देशघातिकर्म या प्रकृतियाँ **छब्बीस** हैं — ज्ञानावरण-४ (मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण, अवधिज्ञानावरण और मनःपर्यय-ज्ञानावरण); दर्शनावरण-३ (चक्षुदर्शनावरण, अचक्षुदर्शनावरण और अवधिदर्शनावरण); मोहनीय-१४ (संज्वलन-४, नोकषाय-९, सम्यक्त्व-१); अन्तराय-५।

प्रश्न २४३ – क्षेत्र-विपाकी प्रकृतियाँ कितनी और कौन-कौनसी हैं?

उत्तर – क्षेत्र-विपाकी कर्म या प्रकृतियाँ **चार** हैं – नरक-गत्यानुपूर्वी, तिर्यक्-गत्यानुपूर्वी, मनुष्य-गत्यानुपूर्वी और देव-गत्यानुपूर्वी।

प्रश्न २४४ – भव-विपाकी प्रकृतियाँ कितनी और कौन-कौनसी हैं?

उत्तर – भव-विपाकी कर्म या प्रकृतियाँ **चार** हैं – नरकायु, तिर्यञ्चायु, मनुष्यायु और देवायु।

प्रश्न २४५ – जीव-विपाकी प्रकृतियाँ कितनी और कौन-कौनसी हैं?

उत्तर – जीव-विपाकी कर्म या प्रकृतियाँ **अठहत्तर** हैं – सभी घातिकर्म-४७, गोत्रकर्म-२, वेदनीयकर्म-२ और नामकर्म-२७ (तीर्थङ्कर प्रकृति-१, उच्छ्वास-१, बादर-१, सूक्ष्म-१, पर्याप्ति-१, अपर्याप्ति-१, सुस्वर-१, दुःस्वर-१, आदेय-१, अनादेय-१, यशःकीर्ति-१, अयशःकीर्ति-१, त्रस-१, स्थावर-१, सुभग-१, दुर्भग-१, विहायोगति-२, गति-४, जाति-५)।

प्रश्न २४६ – पुद्गल-विपाकी प्रकृतियाँ कितनी और कौन-कौनसी हैं?

उत्तर – पुद्गल-विपाकी कर्म या प्रकृतियाँ **बासठ** हैं – कुल १४८ प्रकृतियों में से क्षेत्र-विपाकी-४, भव-विपाकी-४, जीव-विपाकी-७८ – इस प्रकार सब मिलाकर ८६ प्रकृतियाँ घटाने पर, शेष ६२ प्रकृतियाँ पुद्गल-विपाकी हैं।

पुद्गल-विपाकी प्रकृतियाँ सिर्फ नामकर्म में ही हैं। नामकर्म की कुल ९३ प्रकृतियों में जीव-विपाकी-२७ और क्षेत्र-विपाकी-४ (कुल-३१) घटाने पर शेष ६२ प्रकृतियाँ पुद्गल-विपाकी हैं, जो इसप्रकार हैं –

शरीर-५, बन्धन-५, संघात-५, संस्थान-६, संहनन-६, अङ्गोपाङ्ग-३, वर्ण-५, गन्ध-२, रस-५, स्पर्श-८, अगुरुलघु-१, उपघात-१, परघात-१, आतप-१, उद्योत-१, निर्माण-१, प्रत्येक-१, साधारण-१, स्थिर-१, अस्थिर-१, शुभ-१ और अशुभ-१।

प्रश्न २४७ – पाप-प्रकृतियाँ कितनी और कौन-कौनसी हैं?

उत्तर – पाप-प्रकृतियाँ **सौ** हैं – घातिकर्म की सभी-४७, असातावेदनीय-१, नीच-गोत्र-१, नरकायु-१ और नामकर्म-५० (नरकगति-१, नरकगत्यापूर्वी-१, तिर्यग्गति-१, तिर्यग्गत्यानुपूर्वी-१, शुरू की जाति-४, अन्त के संस्थान-५, अन्त के संहनन-५, अप्रशस्तस्पर्श-८, अप्रशस्तरस-५, अप्रशस्तगन्ध-२, अप्रशस्तवर्ण-५, उपघात-१, अप्रशस्त-विहायोगति-१, स्थावर-१, सूक्ष्म-१, अपर्याप्त-१, अनादेय-१, अयशःकीर्ति-१, अशुभ-१, दुर्भग-१, दुःस्वर-१, अस्थिर-१, और साधारण-१)।

प्रश्न २४८ – पुण्य-प्रकृतियाँ कितनी और कौन-कौनसी हैं?

उत्तर – पुण्य-प्रकृतियाँ **अड़सठ** हैं। कर्म की समस्त प्रकृतियाँ १४८ हैं, उनमें नामकर्म की २० स्पर्शादि प्रकृतियाँ पुण्य और पाप दोनों में गिनी जाती हैं, क्योंकि बीसों ही स्पर्शादि किसी को इष्ट, किसी को अनिष्ट होती हैं; इसलिए कुल प्रकृतियाँ १६८ हुईं, इन से १०० पाप-प्रकृतियाँ घटाने पर ६८ पुण्य-प्रकृतियाँ शेष रहती हैं –

साता वेदनीय-१, उच्च गोत्र-१, नरकायु के अतिरिक्त आयु-३, मनुष्यगति-१, मनुष्यगत्यानुपूर्वी-१, देवगति-१, देवगत्यानुपूर्वी-१, शरीर-५, बन्धन-५, संघात-५, पञ्चेन्द्रिय जाति-१, समचतुरस्रसंस्थान-१, वज्रर्षभनाराचसंहनन-१, अङ्गोपाङ्ग-३, प्रशस्तस्पर्श-८, प्रशस्तरस-५,

प्रशस्तगन्ध-२, प्रशस्तवर्ण-५, प्रशस्तविहायोगति-१, अगुरुलघु-१, परघात-१, उच्छ्‌वास-१, उद्योत-१, आतप-१, त्रस-१, बादर-१, पर्याप्त-१, प्रत्येक-१, स्थिर-१, शुभ-१, सुभग-१, सुस्वर-१, निर्माण-१, आदेय-१, यशःकीति-१ और तीर्थङ्करप्रकृति-१।

२.२ स्थितिबन्ध

प्रश्न २४९ — स्थितिबन्ध किसे कहते हैं?

उत्तर — कर्मों के आत्मा के साथ रहने की काल मर्यादा को **स्थितिबन्ध** कहते हैं।[१]

प्रश्न २५० — आठों कर्मों की उत्कृष्ट स्थिति कितनी-कितनी है?

उत्तर — आठों कर्मों की उत्कृष्ट स्थिति इसप्रकार है — ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय और अन्तराय कर्म की तीस-तीस कोड़ा-कोड़ी सागर; मोहनीयकर्म की सत्तर कोड़ा-कोड़ी सागर; नाम और गोत्रकर्म की बीस-बीस कोड़ा-कोड़ी सागर और आयुकर्म की तेतीस सागर।

प्रश्न २५१ — आठों कर्मों की जघन्य स्थिति कितनी-कितनी है?

उत्तर — आठों कर्मों की जघन्य स्थिति इसप्रकार है — वेदनीय की बारह मुहूर्त; नाम तथा गोत्र की आठ-आठ मुहूर्त और शेष समस्त कर्मों की अन्तर्मुहूर्त।

प्रश्न २५२ — एक कोड़ा-कोड़ी किसे कहते हैं?

उत्तर — एक करोड़ को एक करोड़ से गुना करने पर जो संख्या प्राप्त होती है, उसे **एक कोड़ा-कोड़ी** कहते हैं।

---

१. योग के निमित्त से कर्मस्वरूप से परिणत पुद्‌गलस्कन्धों का, कषाय के निमित्त से जीव के साथ एकस्वरूप होकर रहने के काल को **स्थितिबन्ध** कहते हैं।

(— धवला, ६/१,९.६,२/१४६)

प्रश्न २५३ — सागर किसे कहते हैं?

उत्तर — दश कोड़ा-कोड़ी अद्धा पल्यों का एक **सागर** होता है।

प्रश्न २५४ — अद्धा पल्य किसे कहते हैं?

उत्तर — दो हजार कोश गहरे और दो हजार कोश चौड़े गड्ढे में, कैंची से जिसका दूसरा भाग न हो सके — ऐसे उत्तम भोगभूमि के सात दिन तक की आयु के मेंढे के बच्चे के बालों को ठसाठस भरना। उसमें जितने बाल समायें, उनमें से एक-एक बाल को सौ-सौ वर्ष बाद निकालना। जितने समय में वह गड्ढा खाली हो जाये, उतने समय को एक **व्यवहार पल्य** कहते हैं। एक व्यवहार पल्य से असंख्यात गुना बड़ा एक **उद्धार पल्य** होता है तथा एक उद्धार पल्य से असंख्यात गुना बड़ा एक **अद्धा पल्य** होता है।

प्रश्न २५५ — मुहूर्त किसे कहते हैं?

उत्तर — अड़तालीस मिनिट का एक **मुहूर्त** होता है।

प्रश्न २५६ — अन्तर्मुहूर्त किसे कहते हैं?

उत्तर — आवली से ऊपर और मुहूर्त से एक समय कम तक काल को **अन्तर्मुहूर्त** कहते हैं।

प्रश्न २५७ — आवली किसे कहते हैं?

उत्तर — एक उच्छ्‌वास में संख्यात **आवली** होती हैं।

प्रश्न २५८ — उच्छ्‌वास काल किसे कहते हैं?

उत्तर — नीरोगी पुरुष की नाड़ी के एक बार चलने के काल को **उच्छ्‌वास काल** कहते हैं।

प्रश्न २५९ — एक मुहूर्त में कितने उच्छ्‌वास होते हैं?

उत्तर — एक मुहूर्त में तीन हजार सात सौ तिहत्तर (३७७३) **उच्छ्‌वास** होते हैं।

२.३ अनुभागबन्ध

प्रश्न २६० – अनुभागबन्ध किसे कहते हैं?

उत्तर – कर्मों की फल देनेरूप हीनाधिक शक्ति को **अनुभागबन्ध** कहते हैं।

२.४ प्रदेशबन्ध

प्रश्न २६१ – प्रदेशबन्ध किसे कहते हैं?

उत्तर – बँधने वाले कर्मों के परमाणुओं के परिमाण को **प्रदेशबन्ध** कहते हैं।

२.५ कर्मों की विभिन्न अवस्थाएँ

प्रश्न २६२ – उदय किसे कहते हैं?

उत्तर – स्थिति के अनुसार कर्म के फल देने को **उदय** कहते हैं।

प्रश्न २६३ – उदीरणा किसे कहते हैं?

उत्तर – स्थिति पूर्ण होने के पूर्व ही कर्म के फल देने को **उदीरणा** कहते हैं।

प्रश्न २६४ – उपशम किसे कहते हैं?

उत्तर – द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव के निमित्त से कर्म की शक्ति का प्रगट नहीं होना, **उपशम** कहलाता है।

प्रश्न २६५ – उपशम के कितने भेद हैं?

उत्तर – उपशम के **दो** भेद हैं – अन्तरकरणरूप उपशम और सदवस्थारूप उपशम।

प्रश्न २६६ – अन्तरकरणरूप उपशम किसे कहते हैं?

उत्तर – आगामी काल में उदय आने योग्य कर्म-परमाणुओं को आगे-पीछे उदय आने योग्य करना, **अन्तरकरणरूप उपशम** कहलाता है।

प्रश्न २६७ – सदवस्थारूप उपशम किसे कहते हैं?

उत्तर – वर्तमान अवस्था को छोड़कर आगामी काल में उदय आनेवाले कर्मों का सत्ता में रहना, **सदवस्थारूप उपशम** कहलाता है।

प्रश्न २६८ – क्षय किसे कहते हैं?

उत्तर – कर्म की आत्यन्तिक निवृत्ति को **क्षय** कहते हैं।

प्रश्न २६९ – क्षयोपशम किसे कहते हैं?

उत्तर – किसी कर्म के वर्तमान निषेक में सर्वघाति स्पर्द्धकों का उदयाभावी क्षय तथा देशघाति स्पर्द्धकों का उदय और आगामी काल में उदय आनेवाले कर्म के निषेकों का सदवस्थारूप उपशम – ऐसी उस कर्म की अवस्था को **क्षयोपशम** कहते हैं।

प्रश्न २७० – निषेक किसे कहते हैं?

उत्तर – एक समय में कर्म के जितने परमाणु उदय में आते हैं, उन सबके समूह को **निषेक** कहते हैं।

प्रश्न २७१ – स्पर्द्धक किसे कहते हैं?

उत्तर – अनेक प्रकार की अनुभाग शक्ति से युक्त कार्मण वर्गणाओं के समूह को **स्पर्द्धक** कहते हैं।

प्रश्न २७२ – वर्गणा किसे कहते हैं?

उत्तर – वर्गों के समूह को **वर्गणा** कहते हैं।

प्रश्न २७३ – वर्ग किसे कहते हैं?

उत्तर – समान अविभाग प्रतिच्छेदों के धारक प्रत्येक कर्म-परमाणु को **वर्ग** कहते हैं।

प्रश्न २७४ — अविभाग प्रतिच्छेद किसे कहते हैं?

उत्तर — शक्ति के अविभागी अंश को **अविभाग प्रतिच्छेद** कहते हैं।

प्रश्न २७५ — इस प्रकरण में 'शक्ति' शब्द से कौन-सी शक्ति इष्ट है?

उत्तर — यहाँ शक्ति शब्द से कर्मों की अनुभागरूप अर्थात् फल देने की शक्ति इष्ट है।

प्रश्न २७६ — उदयाभावी क्षय किसे कहते हैं?

उत्तर — बिना फल दिये आत्मा से कर्म का सम्बन्ध छूटना, **उदयाभावी क्षय** कहलाता है।

प्रश्न २७७ — उत्कर्षण किसे कहते हैं?

उत्तर — कर्मों की स्थिति एवं अनुभाग का बढ़ना, **उत्कर्षण** कहलाता है।

प्रश्न २७८ — अपकर्षण किसे कहते हैं?

उत्तर — कर्म की स्थिति एवं अनुभाग का घटना, **अपकर्षण** कहलाता है।

प्रश्न २७९ — संक्रमण किसे कहते हैं?[१]

उत्तर — किसी कर्म का सजातीय एक भेद से दूसरे भेदरूप हो जाना, **संक्रमण** कहलाता है।

---

१. प्रश्न — निधत्त किसे कहते हैं?

उत्तर — जो कर्म उदयावली में आने तथा अन्य प्रकृतिरूप संक्रमण होने के योग्य नहीं होता है, उसे **निधत्त** कहते हैं।

प्रश्न — निकाचित किसे कहते हैं?

उत्तर — जो कर्म उदयावली में आने, अन्य प्रकृतिरूप संक्रमण होने तथा उत्कर्षण-अपकर्षण करने के योग्य नहीं होता है, उसे **निकाचित** कहते हैं।

(— गोम्मटसार कर्मकाण्ड, जीवतत्त्व प्रदीपिका, ४४०)

प्रश्न २८० — समय-प्रबद्ध किसे कहते हैं?

उत्तर — एक समय में जितने कर्म परमाणु और नोकर्म परमाणु बँधते हैं, उन सबको **समय-प्रबद्ध** कहते हैं।

प्रश्न २८१ — गुण-हानि किसे कहते हैं?

उत्तर — गुणाकाररूप हीन-हीन द्रव्य (परमाणु) जिसमें पाये जाते हैं, उसे **गुण-हानि** कहते हैं। जैसे — किसी जीव ने एक समय में ६३०० (त्रेसठ सौ) परमाणुओं के समूहरूप समयप्रबद्ध का बन्ध किया और उसमें ४८ समय की स्थिति पड़ी, उसमें गुण-हानियों के समूहरूप नाना गुण-हानि की संख्या छह है — उसमें से प्रथम गुण-हानि के परमाणु ३२००, दूसरी के १६००, तीसरी के ८००, चौथी के ४००, पाँचवीं के २००, छठवीं के १०० हैं। यहाँ उत्तरोत्तर गुण-हानियों में गुणाकाररूप हीन-हीन परमाणु (द्रव्य) पाये जाते हैं, इसलिए इसको **गुण-हानि** कहते हैं।

प्रश्न २८२ — गुण-हानि आयाम किसे कहते हैं?

उत्तर — एक गुण-हानि के समयों को **गुण-हानि आयाम** कहते हैं। जैसे — ऊपर के दृष्टान्त में ४८ समय की स्थिति में गुण-हानि की संख्या है। ४८ में ६ का भाग देने से प्रत्येक गुण-हानि का परिमाण ८ आया। यही **गुण-हानि आयाम** कहलाता है।

प्रश्न २८३ — नाना गुण-हानि किसे कहते हैं?

उत्तर — गुण-हानियों के समूह को **नाना गुण-हानि** कहते हैं। जैसे — ऊपर के दृष्टान्त में आठ-आठ समय की छह गुण-हानि हैं। इस छह की संख्या को **नाना गुण-हानि** का परिमाण जानना चाहिए।

प्रश्न २८४ — अन्योन्याभ्यस्त राशि किसे कहते हैं।

उत्तर — नाना गुण-हानि की संख्या के बराबर ०२ की संख्या

रखकर, उनका परस्पर गुणाकार करने से जो गुणन-फल प्राप्त होता है, उसे **अन्योन्याभ्यस्त राशि** कहते हैं। जैसे – ऊपर के दृष्टान्त में नाना गुण-हानि की संख्या ६ है, अतः ६ बार २ की संख्या रखकर उनका परस्पर गुणा करने से अर्थात् २ × २ × २ × २ × २ × २ = ६४ की संख्या प्राप्त होती है; इसे ही **अन्योन्याभ्यस्त राशि** का परिमाण जानना चाहिए अथवा

अन्योन्याभ्यस्त राशि = $२^{\text{नानागुण-हानि}}$। जैसे – ६४ = $२^{६}$

प्रश्न २८५ – अन्तिम गुण-हानि के द्रव्य का परिमाण किस प्रकार से निकलता है?

उत्तर – समय-प्रबद्ध में एक कम अन्योन्याभ्यस्त राशि का भाग देने पर **अन्तिम गुण-हानि के द्रव्य का परिमाण** निकलता है। जैसे – ६३०० में एक कम ६४ अर्थात् ६४ – १ = ६३ का भाग देने से १०० की संख्या मिलती है, यही अन्तिम गुण-हानि का द्रव्य है।

प्रश्न २८६ – अन्य गुण-हानियों के द्रव्य का परिमाण किस प्रकार निकलता है?

उत्तर – अन्तिम गुण-हानि के द्रव्य को प्रथम गुण-हानि पर्यन्त दूना-दूना करने से अन्य गुण-हानियों के द्रव्य का परिमाण निकलता है। जैसे – २००, ४००, ८००, १६००, ३२००।

प्रश्न २८७ – प्रत्येक गुण-हानि में प्रथमादि समयों के द्रव्य का परिमाण किस प्रकार होता है?

उत्तर – निषेकहार को चय से गुणा करने पर प्रत्येक गुण-हानि के प्रथम समय का द्रव्य निकलता है और प्रथम समय के द्रव्य में से एक-एक चय घटाने से उत्तरोत्तर समयों के द्रव्य का परिमाण निकलता है। जैसे – निषेकहार १६ को चय ३२ से गुणा करने पर प्रथम गुणहानि के प्रथम समय का द्रव्य ५१२ होता है और ५१२ में से

एक-एक चय अर्थात् बत्तीस घटाने से दूसरे समय के द्रव्य का परिमाण ४८०, तीसरे का ४४८, चौथे का ४१६, पाँचवें का ३८४, छठवें का ३५२, सातवें का ३२० और आठवें का २८८ निकलता है। इसीप्रकार द्वितीयादि गुण- हानियों में भी प्रथमादि समयों के द्रव्य का परिमाण निकाल लेना चाहिए।

प्रश्न २८८ – निषेकहार किसे कहते हैं?

उत्तर – गुण-हानि आयाम से दुगुने परिमाण को **निषेकहार** कहते हैं। जैसे – ऊपर के दृष्टान्त में गुण-हानि आयाम ८ से दुगुने १६ को **निषेकहार** कहते हैं।

प्रश्न २८९ – चय किसे कहते हैं?

उत्तर – श्रेणी-व्यवहार गणित में समान हानि या समान वृद्धि के परिमाण को **चय** कहते हैं।

प्रश्न २९० – इस प्रकरण में गुण-हानि के चय का परिमाण निकालने की क्या रीति है?

उत्तर – निषेकहार में एक अधिक गुण-हानि आयाम का परिमाण जोड़कर आधा करने से जो लब्ध आवे, उसको गुण-हानि आयाम से गुणा करे। इस प्रकार गुणा करने से जो गुणनफल होता है, उसका भाग विवक्षित गुण-हानि के द्रव्य में देने से विवक्षित **गुण-हानि के चय का परिमाण** निकलता है। जैसे – निषेकहार १६ में एक अधिक गुण-हानि-आयाम ९ जोड़ने से २५ हुए। पच्चीस के आधे १२.५ को गुण-हानि आयाम ८ से गुणाकार करने से १०० होते हैं। इस १०० का भाग विवक्षित प्रथम गुणहानि के द्रव्य ३२०० में देने से प्रथम गुण-हानि सम्बन्धी चय ३२ आया। इसी प्रकार द्वितीय गुण-हानि के चय का परिमाण १६, तृतीय का ८, चतुर्थ का ४, पञ्चम का २ और अन्तिम का १ जानना चाहिए।

प्रश्न २९१ — अनुभाग की रचना का क्रम क्या है?

उत्तर — द्रव्य की अपेक्षा से जो रचना ऊपर बतायी गयी है, उसमें प्रत्येक गुण-हानि के प्रथमादि समय सम्बन्धी द्रव्य-समूह को **वर्गणा** कहते हैं और उन वर्गणाओं में जो परमाणु हैं, उनको **वर्ग** कहते हैं। — प्रश्न २८७ के उदाहरण के अनुसार प्रथम गुण-हानि के प्रथम वर्गणा में जो ५१२ वर्ग हैं, उनमें अनुभागशक्ति के अविभाग-प्रतिच्छेद समान हैं और वे द्वितीयादि वर्गणाओं के वर्गों के अविभाग-प्रतिच्छेदों की अपेक्षा सबसे न्यून अर्थात् जघन्य हैं।

द्वितीयादि वर्गणा के वर्गों में एक-एक अविभाग-प्रतिच्छेद की अधिकता के क्रम में जिस वर्गणा पर्यन्त एक-एक अविभाग-प्रतिच्छेद बढ़ते हैं, वहाँ तक की वर्गणाओं के समूह का नाम एक **स्पर्द्धक** है और जिस वर्गणा के वर्गों में युगपत् अनेक अविभाग-प्रतिच्छेदों की वृद्धि होकर प्रथम वर्गणा के वर्गों के अविभाग-प्रतिच्छेदों की संख्या से दुगुनी संख्या हो जाती है, वहाँ से दूसरे स्पर्द्धक का प्रारम्भ समझना चाहिए।

इस ही प्रकार जिन-जिन वर्गणाओं के वर्गों में प्रथम वर्गणा के वर्गों के अविभाग-प्रतिच्छेदों की संख्या से तिगुने, चौगुने आदि अविभाग-प्रतिच्छेद होते हैं; वहाँ से तीसरे, चौथे आदि स्पर्द्धकों का प्रारम्भ समझना चाहिए। इस प्रकार एक गुण-हानि में अनेक स्पर्द्धक होते हैं।

२.६ आस्रव

प्रश्न २९२ — आस्रव किसे कहते हैं?

उत्तर — बन्ध के कारण को **आस्रव** कहते हैं।

प्रश्न २९३ — आस्रव के कितने भेद हैं?[१]

उत्तर — आस्रव के **चार** भेद हैं — १- द्रव्यबन्ध का निमित्त कारण, २- द्रव्यबन्ध का उपादान कारण, ३- भावबन्ध का निमित्त

१. प्रश्न क्रमाङ्क ३११ भी देखें।

कारण और ४- भावबन्ध का उपादान कारण।

प्रश्न २९४ — कारण किसे कहते हैं?

उत्तर — कार्य की उत्पादक सामग्री को **कारण** कहते हैं।

प्रश्न २९५ — कारण के कितने भेद हैं?

उत्तर — कारण के **दो** भेद हैं — समर्थकारण और असमर्थकारण।

प्रश्न २९६ — समर्थकारण किसे कहते हैं?

उत्तर — प्रतिबन्ध के अभावसहित सहकारी समस्त सामग्रियों के सद्भाव को **समर्थकारण** कहते हैं। समर्थकारण के होने पर अनन्तर समय में कार्य की उत्पत्ति नियम से होती है।

प्रश्न २९७ — असमर्थकारण किसे कहते हैं?

उत्तर — भिन्न-भिन्न प्रत्येक सामग्री को **असमर्थकारण** कहते हैं। असमर्थकारण कार्योत्पत्ति का नियामक नहीं है।

प्रश्न २९८ — सहकारी सामग्री के कितने भेद हैं?

उत्तर — सहकारी सामग्री के **दो** भेद हैं — निमित्तकारण और उपादानकारण।[१]

प्रश्न २९९ — निमित्तकारण किसे कहते हैं?[२]

उत्तर — जो पदार्थ स्वयं कार्यरूप नहीं परिणमता है, किन्तु कार्य की उत्पत्ति में सहायक होता है, उसे **निमित्तकारण** कहते हैं। जैसे —

१. **उपादान निजशक्ति है, जिय को मूल स्वभाव।**
है निमित्त परयोग तैं, बन्यो अनादि बनाव।।

(—उपादान-निमित्त संवाद; भैया भगवतीदास, छन्द ३)

२. जो पदार्थ स्वयं तो कार्यरूप नहीं परिणमता, परन्तु कार्य की उत्पत्ति में अनुकूल होने का आरोप जिस पर आता है, उसे **निमित्तकारण** कहते हैं। जैसे घट की उत्पत्ति में कुम्भकार, दण्ड, चक्र आदि। **(— लघु जैन सिद्धान्त प्रवेशिका, प्रश्न १४१)**

घट की उत्पत्ति में कुम्भकार, दण्ड, चक्र आदि।

प्रश्न ३०० — उपादानकारण किसे कहते हैं?

उत्तर — जो पदार्थ स्वयं कार्यरूप परिणमता है, उसे **उपादानकारण** कहते हैं। जैसे — घट की उत्पत्ति में मिट्टी। अनादिकाल से द्रव्य में जो पर्यायों का प्रवाह चला आ रहा है, उसमें अनन्तर पूर्वक्षणवर्ती पर्याय उपादानकारण है और अनन्तर उत्तरक्षणवर्ती पर्याय कार्य है।[१]

प्रश्न ३०१ — द्रव्यबन्ध किसे कहते हैं?

उत्तर — कार्मण स्कन्धरूप पुद्गलद्रव्य का आत्मा के साथ एक-क्षेत्रावगाहरूप सम्बन्ध होने को **द्रव्यबन्ध** कहते हैं।

प्रश्न ३०२ — भावबन्ध किसे कहते हैं?

उत्तर — आत्मा के योग-कषायरूप भावों को **भावबन्ध** कहते हैं।

प्रश्न ३०३ — द्रव्यबन्ध का निमित्त कारण क्या है?

उत्तर — आत्मा के योग-कषायरूप भाव **द्रव्यबन्ध के निमित्तकारण** हैं।

प्रश्न ३०४ — द्रव्यबन्ध का उपादानकारण क्या है?

उत्तर — बन्ध होने के पूर्वक्षण में बन्ध होने के सन्मुख कार्मण-स्कन्ध को **द्रव्यबन्ध का उपादानकारण** कहते हैं।

प्रश्न ३०५ — भावबन्ध का निमित्तकारण क्या है?

उत्तर — उदय तथा उदीरणा अवस्था को प्राप्त पूर्वबद्धकर्म, **भावबन्ध का निमित्तकारण** है।

प्रश्न ३०६ — भावबन्ध का उपादानकारण क्या है?

उत्तर — भावबन्ध के विवक्षित समय से अनन्तर पूर्वक्षणवर्त्ती

२. पूर्व परिणामसहित द्रव्य कारणरूप है और उत्तरपरिणामसहित द्रव्य कार्यरूप है — ऐसा नियम है। **(— कार्तिकेयानुप्रेक्षा, २२२)**

योग-कषायरूप आत्मा की पर्याय-विशेष को **भावबन्ध का उपादान कारण** कहते हैं।

प्रश्न ३०७ — भावास्रव किसे कहते हैं?

उत्तर — द्रव्यबन्ध के निमित्तकारण अथवा भावबन्ध के उपादानकारण को **भावास्रव** कहते हैं।[१]

प्रश्न ३०८ — द्रव्यास्रव किसे कहते हैं?

उत्तर — द्रव्यबन्ध के उपादानकारण अथवा भावबन्ध के निमित्तकारण को **द्रव्यास्रव** कहते हैं।[२]

प्रश्न ३०९ — प्रकृतिबन्ध और अनुभागबन्ध में क्या भेद है?

उत्तर — प्रत्येक प्रकृति के भिन्न-भिन्न उपादान शक्तियुक्त अनेक भेदरूप कार्मण-स्कन्ध का आत्मा से सम्बन्ध होना **प्रकृतिबन्ध** कहलाता है और उन ही स्कन्धों में तारतम्यरूप (न्यूनाधिकरूप) फलदान शक्ति को **अनुभागबन्ध** कहते हैं।

प्रश्न ३१० — समस्त प्रकृतियों के बन्ध का कारण सामान्यतया योग है या उसमें कुछ विशेषता है?

उत्तर — जिसप्रकार भिन्न-भिन्न उपादान शक्तियुक्त नाना प्रकार के भोजनों को मनुष्य, हस्त द्वारा विशेष इच्छापूर्वक ग्रहण करता है और विशेष इच्छा के अभाव में उदर-पूरण करने के लिए भोजन-सामान्य का ग्रहण करता है; उस ही प्रकार यह जीव विशेष कषाय के अभाव में योगमात्र से केवल साता वेदनीयरूप कर्म को ग्रहण करता है, परन्तु वह

१-२. जीव की शुभाशुभभावमय विकारी अवस्था को **भावास्रव** कहते हैं और उससमय कर्मयोग्य नवीन रजकणों का स्वयं-स्वत: आत्मा के साथ एकक्षेत्रावगाहरूप आना **द्रव्यास्रव** है। **(— लघु जैन सिद्धान्त प्रवेशिका, प्रश्न १२५)**

योग, यदि किसी कषाय-विशेष से अनुरञ्जित हो तो अन्य-अन्य प्रकृतियों का भी बन्ध करता है।

प्रश्न ३११ — प्रकृतिबन्ध के कारणत्व की अपेक्षा से आस्रव के कितने भेद हैं?

उत्तर — प्रकृतिबन्ध के कारण **पाँच** हैं — मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग।[१]

प्रश्न ३१२ — मिथ्यात्व किसे कहते हैं?

उत्तर — मिथ्यात्व प्रकृति के उदय से अदेव में देवबुद्धि, अतत्त्व में तत्त्वबुद्धि, अधर्म में धर्मबुद्धि इत्यादि विपरीत अभिनिवेश (उल्टी मान्यता) रूप जीव के परिणाम को **मिथ्यात्व** कहते हैं।[२]

प्रश्न ३१३ — मिथ्यात्व के कितने भेद हैं?

उत्तर — मिथ्यात्व के **पाँच** भेद हैं — एकान्तमिथ्यात्व, विपरीतमिथ्यात्व, संशयमिथ्यात्व, अज्ञानमिथ्यात्व और विनयमिथ्यात्व।

प्रश्न ३१४ — एकान्तमिथ्यात्व किसे कहते हैं?

उत्तर — अनन्त धर्मयुक्त धर्मी के सम्बन्ध में 'यह ऐसा ही है, अन्यथा नहीं' इत्यादिरूप एकान्त अभिनिवेश (अभिप्राय) को **एकान्तमिथ्यात्व** कहते हैं। जैसे — बौद्ध मतावलम्बी पदार्थ को सर्वथा क्षणिक मानते हैं।

---

१. यहाँ मात्र प्रकृतिबन्ध का कारण कहा गया है, परन्तु इन पाँच प्रत्ययों को चारों प्रकार के बन्ध का कारण समझना चाहिए। **(प्रश्न क्रमाङ्क २९३ भी देखें)**

२. प्रयोजनभूत जीवादि सात तत्त्वों के अन्यथा श्रद्धान को मिथ्यात्व या **मिथ्यात्व** कहते हैं। मिथ्यात्व दो प्रकार का है — अगृहीत और गृहीत। अनादिकाल से जीव की शरीरादि परपदार्थों में एकत्वबुद्धि **अगृहीत मिथ्यादर्शन** है तथा कुगुरु, कुदेव और कुधर्म के निमित्त से जो अनादिकालीन मिथ्यात्व का पोषण करना **गृहीत मिथ्यादर्शन** है। **(— छहढाला, दूसरी ढाल)**

प्रश्न ३१५ — विपरीतमिथ्यात्व किसे कहते हैं?

उत्तर — 'सग्रन्थ निर्ग्रन्थ हैं' अर्थात् वस्त्रधारी साधु होते हैं या 'केवली ग्रासाहारी (कवलाहारी) हैं' इत्यादि रुचि या श्रद्धा को **विपरीतमिथ्यात्व** कहते हैं।

प्रश्न ३१६ — संशयमिथ्यात्व किसे कहते हैं?

उत्तर — 'धर्म का लक्षण अहिंसा है या नहीं' इत्यादिरूप से सन्देहयुक्त श्रद्धा को **संशयमिथ्यात्व** कहते हैं।

प्रश्न ३१७ — अज्ञानमिथ्यात्व किसे कहते हैं?

उत्तर — जहाँ हिताहित के विवेक का कुछ भी सद्भाव नहीं होता है — ऐसी श्रद्धा को **अज्ञान-मिथ्यात्व** कहते हैं। जैसे — पशुवध में धर्म मानना।

प्रश्न ३१८ — विनयमिथ्यात्व किसे कहते हैं?

उत्तर — समस्त देवों और समस्त मतों को समान माननेरूप श्रद्धा को **विनयमिथ्यात्व** कहते हैं।

प्रश्न ३१९ — अविरति किसे कहते हैं?

उत्तर — हिंसा आदि पापों तथा इन्द्रिय-मन के विषयों में प्रवृति को **अविरति** कहते हैं।

प्रश्न ३२० — अविरति के कितने भेद हैं?[१]

उत्तर — अविरति के **तीन** भेद हैं — १. अनन्तानुबन्धी कषायोदय- जनित अविरति, २. अप्रत्याख्यानावरण कषायोदयजनित अविरति और ३. प्रत्याख्यानावरण कषायोदयजनित अविरति।

---

१. अन्य अपेक्षा से अविरति के बारह भेद हैं — षट्काय के जीवों की हिंसा का त्याग नहीं करना और पाँच इन्द्रिय और मन के विषयों में प्रवृत्ति करना।
(— लघु जैन सिद्धान्त प्रवेशिका, प्रश्न १५९)

प्रश्न ३२१ – प्रमाद किसे कहते हैं?[१]

उत्तर – संज्वलनकषाय और नोकषाय के तीव्र उदय से निरतिचार चारित्र पालने में अनुत्साह तथा स्वरूप की असावधानी को **प्रमाद** कहते हैं।

प्रश्न ३२२ – प्रमाद के कितने भेद हैं?

उत्तर – प्रमाद के **पन्द्रह** भेद हैं – चार विकथा (स्त्रीकथा, राष्ट्रकथा, भोजनकथा और राजकथा); चार कषाय (संज्वलन कषाय के तीव्रोदयजनित क्रोध, मान, माया और लोभ); पाँच इन्द्रियों के विषय; एक निद्रा, और एक स्नेह।

प्रश्न ३२३ – कषाय किसे कहते हैं?

उत्तर – संज्वलनकषाय और नोकषाय के मन्द उदय में प्रादुर्भूत आत्मा के परिणाम-विशेष को **कषाय** कहते हैं।[२]

प्रश्न ३२४ – योग किसे कहते हैं?

उत्तर – मनोवर्गणा, वचनवर्गणा और कायवर्गणा (आहार-वर्गणा तथा कार्मण-वर्गणा) के अवलम्बन से कर्म-नोकर्म को ग्रहण करने की शक्ति-विशेष को **योग** कहते हैं।

प्रश्न ३२५ – योग के कितने भेद हैं?

उत्तर – योग के पन्द्रह भेद हैं – चार मनोयोग (सत्य मनोयोग, असत्य मनोयोग, उभय मनोयोग और अनुभय मनोयोग); चार वचनयोग (सत्य वचनयोग, असत्य वचनयोग, उभय वचनयोग और अनुभय वचनयोग), और सात काययोग (औदारिक, औदारिकमिश्र, वैक्रियक, वैक्रियकमिश्र, आहारक, आहारकमिश्र और कार्मण काययोग)।

प्रश्न ३२६ – मिथ्यात्व की प्रधानता से कितनी और किन-किन प्रकृतियों का बन्ध होता है?

उत्तर – मिथ्यात्व की प्रधानता से **सोलह** प्रकृतियों का बन्ध होता है – मिथ्यात्व, हुण्डक संस्थान, नपुंसकवेद, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, नरकायु, असंप्राप्तासृपाटिका संहनन, चार जाति (एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय); स्थावर, आतप, सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारण।

प्रश्न ३२७ – अनन्तानुबन्धी कषायोदयजनित अविरति की प्रधानता से कितनी और किन-किन प्रकृतियों का बन्ध होता है?

उत्तर – अनन्तानुबन्धी कषायोदयजनित अविरति की प्रधानता से **पच्चीस** प्रकृतियों का बन्ध होता है – अनन्तानुबन्धी क्रोध-मान-माया-लोभ, स्त्यानगृद्धि, निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, अप्रशस्त विहायोगति, स्त्रीवेद, नीच गोत्र, तिर्यग्गति, तिर्यग्गत्यानुपूर्वी, तिर्यगायु, उद्योत, चार संस्थान (न्यग्रोध परिमण्डल, स्वाति, कुब्जक और वामन), चार संहनन (वज्रनाराच, नाराच, अर्धनाराच और कीलित)।

प्रश्न ३२८ – अप्रत्याख्यानावरण कषायोदयजनित अविरति की प्रधानता से कितनी और किन-किन प्रकृतियों का बन्ध होता है?

उत्तर – अप्रत्याख्यानावरण कषायोदयजनित अविरति की प्रधानता से **दश** प्रकृतियों का बन्ध होता है – अप्रत्याख्यानावरण क्रोध-मान-माया-लोभ, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, मनुष्यायु, औदारिक शरीर, औदारिक अङ्गोपाङ्ग और वज्रवृषभनाराच संहनन।

---

१. प्रमाद की इस परिभाषा में छठवें गुणस्थान के प्रमाद को ही प्रमाद कहा गया है, जबकि पहले गुणस्थान से छठवें गुणस्थान तक प्रमाद की सत्ता होती है, लेकिन यहाँ पहले से लेकर पाँचवें गुणस्थान तक के प्रमाद को उन-उन गुणस्थानों के योग्य मिथ्यात्व और अविरति भावों में अन्तर्भाव किया गया है।

२. कषाय की इस परिभाषा में मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद के बाद जो कषाय बचती है, उसे ही कषाय कहा गया है। जबकि मिथ्यात्व, अविरति और प्रमाद के साथ भी कषाय होती है, परन्तु यहाँ उनके साथ रहनेवाली कषाय को मिथ्यात्व, अविरति और प्रमाद के अन्तर्गत में शामिल किया गया है।

प्रश्न ३२९ — प्रत्याख्यानावरण कषायोदयजनित अविरति की प्रधानता से कितनी और किन-किन प्रकृतियों का बन्ध होता है?

उत्तर — प्रत्याख्यानावरण कषायोदयजनित अविरति से **चार** प्रकृतियों का बन्ध होता है — प्रत्याख्यानावरण क्रोध-मान-माया-लोभ।

प्रश्न ३३० — प्रमाद की प्रधानता से कितनी और किन-किन प्रकृतियों का बन्ध होता है?

उत्तर — प्रमाद से **छह** प्रकृतियों का बन्ध होता है — अस्थिर, अशुभ, असाता वेदनीय, अयशःकीर्ति, अरति और शोक।

प्रश्न ३३१ — कषाय की प्रधानता से कितनी और किन-किन प्रकृतियों का बन्ध होता है?

उत्तर — कषाय से **अट्ठावन** प्रकृतियों का बन्ध होता है — देवायु, निद्रा, प्रचला, तीर्थङ्कर, निर्माण, प्रशस्त विहायोगति, पञ्चेन्द्रिय जाति, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, आहारक शरीर, आहारक अङ्गोपाङ्ग, समचतुरस्र संस्थान, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक अङ्गोपाङ्ग, देवगति, देव-गत्यानुपूर्वी, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, हास्य, रति, जुगुप्सा, भय, पुरुषवेद, संज्वलन क्रोध-मान-माया-लोभ, मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण, अवधिज्ञानावरण, मनःपर्ययज्ञानावरण, केवलज्ञानावरण, चक्षुदर्शनावरण, अचक्षुदर्शनावरण, अवधिदर्शनावरण, केवलदर्शनावरण, दानान्तराय, लाभान्तराय, भोगान्तराय, उपभोगान्तराय, वीर्यान्तराय, यशस्कीर्ति और उच्च गोत्र।

प्रश्न ३३२ — योग की प्रधानता से किस प्रकृति का बन्ध होता है?

उत्तर — योग की प्रधानता से एक साता वेदनीय का बन्ध होता है।

प्रश्न ३३३ — कर्म-प्रकृतियों की संख्या १४८ है, परन्तु उनमें केवल १२० प्रकृतियों के ही कारण बताये गये हैं; सो २८ प्रकृतियों का क्या होता है?

उत्तर — बन्ध योग्य १२० प्रकृतियों में बीस स्पर्शादि की जगह मुख्य चार का ग्रहण किया गया है — इस कारण १६ तो ये प्रकृतियाँ कम हो जाती हैं। पाँच शरीरों के पाँच बन्धन तथा पाँच संघात का ग्रहण भी नहीं किया जाता — इस कारण १० प्रकृतियाँ ये भी कम हो जाती हैं। सम्यक्मिथ्यात्व तथा सम्यक्प्रकृति — इन २ प्रकृतियों का भी बन्ध नहीं होता है; क्योंकि सम्यग्दृष्टि जीव पूर्वबद्ध मिथ्यात्व प्रकृति के तीन खण्ड करता है, तब इन २ प्रकृतियों का प्रादुर्भाव होता है। इस कारण २ प्रकृतियाँ ये भी कम हो जाती हैं। इस प्रकार २८ प्रकृतियाँ कम करके बन्ध योग्य १२० प्रकृतियाँ मानी गयी हैं।

प्रश्न ३३४ — द्रव्यास्रव के कितने भेद हैं?

उत्तर — द्रव्यास्रव के दो भेद हैं — साम्परायिक और ईर्यापथ।

प्रश्न ३३५ — साम्परायिक आस्रव किसे कहते हैं?

उत्तर — जीव के कषाय-भावों के निमित्त से जो कर्म-प्रकृतियाँ आत्मा में कुछ काल तक के लिए स्थितिबन्ध को प्राप्त होते हैं, उनके आस्रव को **साम्परायिक आस्रव** कहते हैं।

प्रश्न ३३६ — ईर्यापथ आस्रव किसे कहते हैं?

उत्तर — जीव में मात्र योग के निमित्त से जिन कर्म-परमाणुओं का बन्ध, उदय और निर्जरा एक ही समय में होता है, उनके आस्रव को **ईर्यापथ आस्रव** कहते हैं।

प्रश्न ३३७ — इन दोनों आस्रवों के स्वामी कौन-कौन हैं?

उत्तर — साम्परायिक आस्रव का स्वामी कषायसहित जीव और ईर्यापथ का स्वामी कषायरहित जीव होता है।

प्रश्न ३३८ — पुण्यास्रव और पापास्रव का कारण क्या है?

उत्तर — शुभयोग से पुण्यास्रव और अशुभयोग से पापास्रव होता है।

प्रश्न ३३९ — शुभयोग और अशुभयोग किसे कहते हैं?

उत्तर — शुभपरिणाम से उत्पन्न योग को **शुभयोग** और अशुभपरिणाम से उत्पन्न योग को **अशुभयोग** कहते हैं।

प्रश्न ३४० — जिस समय जीव को शुभयोग होता है, उस समय पापप्रकृतियों का आस्रव होता है या नहीं?

उत्तर — जिस समय जीव को शुभयोग होता है, उस समय भी पापप्रकृतियों का आस्रव होता रहता है।

प्रश्न ३४१ — यदि शुभयोग के समय भी पापास्रव होता है तो शुभयोग, पापास्रव का भी कारण ठहरा?

उत्तर — शुभयोग, पापास्रव का कारण नहीं है, क्योंकि जिस समय जीव में शुभयोग होता है, उस समय पुण्यप्रकृतियों में स्थिति–अनुभाग अधिक होता है और पाप प्रकृतियों में कम; इसी प्रकार जब अशुभयोग होता है, तब पापप्रकृतियों में स्थिति–अनुभाग अधिक पड़ता है और पुण्यप्रकृतियों में कम। तत्त्वार्थसूत्र के छठवें अध्याय में ज्ञानावरणादि प्रकृतियों के आस्रव के कारण जो प्रदोष, निह्नव आदि कहे गये हैं, उसका अभिप्राय है कि उन भावों से उन–उन प्रकृतियों में स्थिति–अनुभाग अधिक–अधिक पड़ते हैं। अन्यथा जो ज्ञानावरणादिक पापप्रकृतियों का आस्रव दशवें गुणस्थान तक सिद्धान्तशास्त्र में कहा है, उससे विरोध आता है अथवा वहाँ शुभयोग के अभाव का प्रसङ्ग आता है, क्योंकि शुभयोग दशवें गुणस्थान से पहले–पहले ही होता है।

।। इति द्वितीयोऽध्यायः समाप्तः।।

तृतीय अध्याय

जीव की खोज

(दोहा)

मार्गणा हो जीव की, जो खोजें निज जीव।
लोकत्रय त्रयकाल में, अनुभव करो सदीव।।

३.१ जीव के असाधारण पाँच भाव

प्रश्न ३४२ — जीव के असाधारण भाव कितने हैं?

उत्तर — जीव के असाधारण भाव **पाँच** हैं — औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक, औदयिक और पारिणामिकभाव।

प्रश्न ३४३ — औपशमिकभाव किसे कहते हैं?

उत्तर — जो भाव किसी कर्म के उपशम के निमित्त से उत्पन्न होता है, उसे **औपशमिकभाव** कहते हैं।

प्रश्न ३४४ — क्षायिकभाव किसे कहते हैं?

उत्तर — जो भाव किसी कर्म के क्षय के निमित्त से उत्पन्न होता है, उसे **क्षायिकभाव** कहते हैं।

प्रश्न ३४५ — क्षायोपशमिकभाव किसे कहते हैं?

उत्तर — जो भाव कर्मों के क्षयोपशम के निमित्त से उत्पन्न होता है, उसे **क्षायोपशमिकभाव** कहते हैं।

प्रश्न ३४६ — औदयिकभाव किसे कहते हैं?

उत्तर — जो भाव कर्मों के उदय के निमित्त से उत्पन्न होता है, उसे **औदयिकभाव** कहते हैं।

प्रश्न ३४७ — पारिणामिकभाव किसे कहते हैं?

उत्तर — जो भाव कर्मों के उपशम, क्षय, क्षयोपशम और उदय की अपेक्षा नहीं रखता है और जो जीव का स्वभावमात्र होता है, उसे **परिणामिकभाव** कहते हैं।

प्रश्न ३४८ — औपशमिकभाव के कितने भेद हैं?

उत्तर — औपशमिकभाव के **दो** भेद हैं — सम्यक्त्व और चारित्र।

प्रश्न ३४९ — क्षायिकभाव के कितने भेद हैं?

उत्तर — क्षायिकभाव के **नौ** भेद हैं — क्षायिकसम्यक्त्व, क्षायिकचारित्र, क्षायिकदर्शन, क्षायिकज्ञान, क्षायिकदान, क्षायिकलाभ, क्षायिकभोग, क्षायिक-उपभोग और क्षायिकवीर्य।

प्रश्न ३५० — क्षायोपशमिकभाव के कितने भेद हैं?

उत्तर — क्षायोपशमिकभाव के **अठारह** भेद हैं — क्षायोपशमिक-सम्यक्त्व, क्षायोपशमिकचारित्र (सकलसंयम), देशसंयम (संयमासंयम), चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन, मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन:पर्ययज्ञान, कुमतिज्ञान, कुश्रुतज्ञान, कुअवधिज्ञान, क्षायोपशमिकदान, क्षायोपशमिकलाभ, क्षायोपशमिकभोग, क्षायोपशमिक-उपभोग और क्षायोपशमिकवीर्य।

प्रश्न ३५१ — औदयिकभाव के कितने भेद हैं?

उत्तर — औदयिकभाव के **इक्कीस** भेद हैं — चार गति, चार कषाय, तीन लिङ्ग, मिथ्यादर्शन, अज्ञान, असंयम, असिद्धत्व और छह लेश्या — कृष्ण, नील, कापोत, पीत, पद्म और शुक्ल।

प्रश्न ३५२ — पारिणामिकभाव के कितने भेद हैं?

उत्तर — पारिणामिकभाव के **तीन** भेद हैं — जीवत्व, भव्यत्व और अभव्यत्व।

३.२ लेश्या और उसके भेद

प्रश्न ३५३ — लेश्या किसे कहते हैं?

उत्तर — कषाय से अनुरञ्जित योगों की प्रवृत्ति को **भावलेश्या** कहते हैं और शरीर के कृष्ण, नील, कपोत तथा पीत, पद्म, शुक्ल वर्णों को **द्रव्यलेश्या** कहते हैं।

३.३ उपयोग और उसके भेद

प्रश्न ३५४ — उपयोग किसे कहते हैं?

उत्तर — जीव के लक्षणरूप चैतन्यानुविधायी परिणाम को **उपयोग** कहते हैं।

प्रश्न ३५५ — उपयोग के कितने भेद हैं?

उत्तर — उपयोग के **दो** भेद हैं — दर्शनोपयोग और ज्ञानोपयोग।

प्रश्न ३५६ — दर्शनोपयोग के कितने भेद हैं?

उत्तर — दर्शनोपयोग के **चार** भेद हैं — चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन और केवलदर्शन।

प्रश्न ३५७ — ज्ञानोपयोग के कितने भेद हैं?

उत्तर — ज्ञानोपयोग के **आठ** भेद हैं — मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन:पर्ययज्ञान, केवलज्ञान, कुमतिज्ञान, कुश्रुतज्ञान और कुअवधिज्ञान।

३.४ संज्ञा और उसके भेद

प्रश्न ३५८ — संज्ञा किसे कहते हैं?

उत्तर — अभिलाषा या वाञ्छा को **संज्ञा** कहते हैं।

प्रश्न ३५९ — संज्ञा के कितने भेद हैं?

उत्तर — संज्ञा के **चार** भेद हैं — आहार, भय, मैथुन और परिग्रह।

३.५ मार्गणा और उसके भेद

प्रश्न ३६० — मार्गणा किसे कहते हैं?

उत्तर — जिन-जिन धर्म-विशेषों से जीवों का अन्वेषण (खोज) किया जाए, उन-उन धर्म-विशेषों को **मार्गणा** कहते हैं।

प्रश्न ३६१ — मार्गणा के कितने भेद हैं?

उत्तर — मार्गणा के **चौदह** भेद हैं — गति, इन्द्रिय, काय, योग, वेद, कषाय, ज्ञान, संयम, दर्शन, लेश्या, भव्यत्व, सम्यक्त्व, संज्ञित्व और आहारकमार्गणा।

३.६ गतिमार्गणा और उसके भेद

प्रश्न ३६२ — गति किसे कहते हैं?

उत्तर — गति नामकर्म के उदय से जीव की पर्याय-विशेष को **गति** कहते हैं।

प्रश्न ३६३ — गति के कितने भेद हैं?

उत्तर — गति के **चार** भेद हैं — नरकगति, तिर्यञ्चगति, मनुष्यगति और देवगति।

३.७ इन्द्रियमार्गणा और उसके भेद–प्रभेद

प्रश्न ३६४ — इन्द्रिय किसे कहते हैं?

उत्तर — आत्मा के लिङ्ग (चिह्न) को **इन्द्रिय** कहते हैं।

प्रश्न ३६५ — इन्द्रिय के कितने भेद हैं?

उत्तर — इन्द्रिय के **दो** भेद हैं — द्रव्येन्द्रिय और भावेन्द्रिय।

प्रश्न ३६६ — द्रव्येन्द्रिय किसे कहते हैं?

उत्तर — निर्वृत्ति और उपकरण को **द्रव्येन्द्रिय** कहते हैं।

प्रश्न ३६७ — निर्वृत्ति किसे कहते हैं?

उत्तर — प्रदेशों की विशेष रचना को **निर्वृत्ति** कहते हैं।

प्रश्न ३६८ — निर्वृत्ति के कितने भेद हैं?

उत्तर — निर्वृत्ति के **दो** भेद हैं — बाह्य निवृत्ति और आभ्यन्तर निवृत्ति।

प्रश्न ३६९ — बाह्य निर्वृत्ति किसे कहते हैं?

उत्तर — इन्द्रियों के आकाररूप पुद्गल की विशेष रचना को **बाह्य निर्वृत्ति** कहते हैं।

प्रश्न ३७० — आभ्यन्तर निर्वृत्ति किसे कहते हैं?

उत्तर — आत्मा के प्रदेशों की इन्द्रियाकार विशेष रचना को **आभ्यन्तर निर्वृत्ति** कहते हैं।

प्रश्न ३७१ — उपकरण किसे कहते हैं?

उत्तर — जो निर्वृत्ति का उपकार (रक्षा) करता है, उसे **उपकरण** कहते हैं।

प्रश्न ३७२ — उपकरण के कितने भेद हैं?

उत्तर — उपकरण के **दो** भेद हैं — आभ्यन्तर उपकरण और बाह्य उपकरण।

प्रश्न ३७३ — आभ्यन्तर उपकरण किसे कहते हैं?

उत्तर — नेत्र-इन्द्रिय में कृष्ण-शुक्ल मण्डल की तरह, सभी इन्द्रियों में जो निर्वृत्ति का उपकार करता है, उसे **आभ्यन्तर उपकरण** कहते हैं।

प्रश्न ३७४ — बाह्य उपकरण किसे कहते हैं?

उत्तर — नेत्र-इन्द्रिय में पलक वगैरह की तरह, जो निर्वृत्ति का उपकार करता है, उसे **बाह्य उपकरण** कहते हैं।

प्रश्न ३७५ — भावेन्द्रिय किसे कहते हैं?

उत्तर — लब्धि और उपयोग को **भावेन्द्रिय** कहते हैं।

प्रश्न ३७६ — लब्धि किसे कहते हैं?

उत्तर — ज्ञानावरणकर्म के विशेष क्षयोपशम को **लब्धि** कहते हैं।

प्रश्न ३७७ — उपयोग किसे कहते हैं?

उत्तर — ज्ञानावरणकर्म का क्षयोपशम होने पर द्रव्येन्द्रिय के निमित्त से उद्यमशील आत्मा के परिणाम को **उपयोग** कहते हैं।

प्रश्न ३७८ — द्रव्येन्द्रिय के कितने भेद हैं?

उत्तर — द्रव्येन्द्रिय के **पाँच** भेद हैं — स्पर्शनेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय और कर्णेन्द्रिय।

प्रश्न ३७९ — स्पर्शनेन्द्रिय किसे कहते हैं?

उत्तर — जिस इन्द्रिय के द्वारा आठ प्रकार के स्पर्श का ज्ञान होता है, उसे **स्पर्शनेन्द्रिय** कहते हैं।

प्रश्न ३८० — रसनेन्द्रिय किसे कहते हैं?

उत्तर — जिस इन्द्रिय के द्वारा पाँच प्रकार के रस (स्वाद) का ज्ञान होता है, उसे **रसनेन्द्रिय** कहते हैं।

प्रश्न ३८१ — घ्राणेन्द्रिय किसे कहते हैं?

उत्तर — जिस इन्द्रिय के द्वारा दो प्रकार के गन्ध का ज्ञान होता है, उसे **घ्राणेन्द्रिय** कहते है।

प्रश्न ३८२ — चक्षुरिन्द्रिय किसे कहते हैं?

उत्तर — जिस इन्द्रिय के द्वारा पाँच प्रकार के वर्ण (रंग) का ज्ञान होता है, उसे **चक्षुरिन्द्रिय** कहते हैं।

प्रश्न ३८३ — कर्णेन्द्रिय किसे कहते हैं?

उत्तर — जिस इन्द्रिय के द्वारा सात प्रकार के स्वरों का तथा भाषा का ज्ञान होता है, उसे **कर्णेन्द्रिय** कहते हैं।

प्रश्न ३८४ — किन-किन जीवों की कौन-कौनसी इन्द्रियाँ होती हैं?

उत्तर — पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति — इन पाँच स्थावरकाय जीवों की एक स्पर्शन-इन्द्रिय ही होती है। कृमि आदि त्रसकाय जीवों की स्पर्शन और रसना — ये दो इन्द्रियाँ होती हैं। पिपीलिका (चीटी) आदि त्रसकाय जीवों की स्पर्शन, रसना और घ्राण — ये तीन इन्द्रियाँ होती हैं। भ्रमर, मक्षिका आदि त्रसकाय-जीवों की श्रोत्र (कर्ण) के बिना शेष चार इन्द्रियाँ होती हैं। घोड़े आदि पशु, मनुष्य, देव और नारकी त्रसकाय जीवों की पाँचों इन्द्रियाँ होती हैं।

३.८ कायमार्गणा और उसके भेद-प्रभेद

प्रश्न ३८५ — काय किसे कहते हैं?

उत्तर — त्रस और स्थावर नामकर्म के उदय से पुद्गलों के प्रदेश-प्रचय को **काय** कहते हैं।

प्रश्न ३८६ — त्रस किसे कहते हैं?

उत्तर — त्रस नामकर्म के उदय से द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रियों में जन्म लेने वाले जीवों को **त्रस** कहते हैं।

प्रश्न ३८७ — स्थावर किसे कहते है?

उत्तर — स्थावर नामकर्म के उदय से पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति में जन्म लेने वाले जीवों को **स्थावर** कहते हैं।

प्रश्न ३८८ — बादर किसे कहते हैं?

उत्तर — जो स्वयं अन्य स्थूल पदार्थों से रुकता है और अन्य स्थूल पदार्थों को रोकता है, उसे **बादर** कहते हैं।

प्रश्न ३८९ – सूक्ष्म किसे कहते हैं?

उत्तर – जो स्वयं अन्य पदार्थों से नहीं रुकता है और अन्य पदार्थों को नहीं रोकता है, उसे **सूक्ष्म** कहते हैं।

प्रश्न ३९० – वनस्पति के कितने भेद हैं?

उत्तर – वनस्पति के **दो** भेद हैं – प्रत्येक वनस्पति और साधारण वनस्पति।

प्रश्न ३९१ – प्रत्येक वनस्पति किसे कहते हैं?

उत्तर – जिस वनस्पति का स्वामी एक ही जीव होता है, उसे **प्रत्येक वनस्पति** कहते हैं।

प्रश्न ३९२ – साधारण वनस्पति किसे कहते हैं?

उत्तर – जिन जीवों के आहार, आयु, श्वासोच्छ्वास और काय – ये साधारण (समान अथवा एक) होते हैं, उन्हें **साधारण वनस्पति** कहते हैं। जैसे – कन्दमूल आदि।

प्रश्न ३९३ – प्रत्येक वनस्पति के कितने भेद हैं?

उत्तर – प्रत्येक वनस्पति के **दो** भेद हैं – सप्रतिष्ठित प्रत्येक और अप्रतिष्ठित प्रत्येक।

प्रश्न ३९४ – सप्रतिष्ठित प्रत्येक किसे कहते हैं?

उत्तर – जिस प्रत्येक वनस्पति के आश्रय से अनेक साधारण वनस्पति शरीर होते हैं, उसे **सप्रतिष्ठित प्रत्येक** कहते हैं।

प्रश्न ३९५ – अप्रतिष्ठित प्रत्येक किसे कहते हैं?

उत्तर – जिस प्रत्येक वनस्पति के आश्रय से कोई भी साधारण वनस्पति नहीं होती, उसे **अप्रतिष्ठित प्रत्येक** कहते हैं।

प्रश्न ३९६ – साधारण वनस्पति, सप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति के आश्रय में ही होती है या और कहीं भी होती है?

उत्तर – पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, केवली भगवान, आहारक शरीर, देव और नारकी – इन आठ के अतिरिक्त सब संसारी जीवों के शरीर, साधारण वनस्पति अर्थात् निगोद के आश्रयभूत होते हैं।

प्रश्न ३९७ – साधारण वनस्पति (निगोद) के कितने भेद हैं?

उत्तर – साधारण वनस्पति (निगोद) के **दो** भेद हैं – नित्य निगोद और इतर निगोद।

प्रश्न ३९८ – नित्य निगोद किसे कहते हैं?

उत्तर – जिस जीव ने कभी भी निगोद के अलावा दूसरी पर्याय नहीं पायी है अर्थात् जो अनादि से अब तक निगोद पर्याय में ही रहा है, उसे **नित्य निगोद** कहते हैं।

प्रश्न ३९९ – इतर निगोद किसे कहते हैं?

उत्तर – जो जीव निगोद से निकलकर दूसरी पर्याय पाकर फिर निगोद में उत्पन्न होते हैं, उसे **इतर निगोद** कहते हैं।

प्रश्न ४०० – कौन-कौनसे जीव बादर और सूक्ष्म हैं?

उत्तर – पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, नित्यनिगोद और इतरनिगोद – ये छह बादर और सूक्ष्म दोनों प्रकार के होते हैं। शेष सभी जीव बादर ही होते हैं; सूक्ष्म नहीं होते।

३.९ योगमार्गणा और उसके भेद

प्रश्न ४०१ – योग किसे कहते हैं?

उत्तर – पुद्गल-विपाकी शरीर नामकर्म और अङ्गोपाङ्ग नामकर्म के उदय से मनोवर्गणा, वचनवर्गणा तथा कायवर्गणा के अवलम्बन से कर्म-नोकर्म को ग्रहण करने हेतु जीव की विशेष शक्ति को **भावयोग**

कहते हैं तथा इस भावयोग के निमित्त से आत्मप्रदेशों के परिस्पन्दन (चञ्चल होने) को **द्रव्ययोग** कहते हैं।

प्रश्न ४०२ — योग के कितने भेद हैं?

उत्तर — योग के **पन्द्रह** भेद हैं — चार मनोयोग, चार वचनयोग, और सात काययोग।

३.१० वेदमार्गणा और उसके भेद

प्रश्न ४०३ — वेद किसे कहते हैं?

उत्तर — नोकषाय के उदय से उत्पन्न हुई जीव की मैथुन करने की अभिलाषा को **भाववेद** कहते हैं और जीव के नामकर्म के उदय से आविर्भूत शरीर के विशेष चिह्न को **द्रव्यवेद** कहते हैं।

प्रश्न ४०४ — वेद के कितने भेद हैं?

उत्तर — वेद के **तीन** भेद हैं — स्त्रीवेद, पुरुषवेद और नपुंसकवेद।

३.११ कषायमार्गणा और उसके भेद

प्रश्न ४०५ — कषाय किसे कहते हैं?

उत्तर — जो आत्मा के सम्यक्त्व, देशचारित्र, सकलचारित्र, और यथाख्यातचारित्ररूप परिणामों को घातती हैं, उन्हें **कषाय** कहते हैं।[१]

प्रश्न ४०६ — कषाय के कितने भेद हैं?

उत्तर — कषाय के **सोलह** भेद हैं — चार अनन्तानुबन्धी, चार अप्रत्याख्यानावरणीय, चार प्रत्याख्यानावरणीय और चार संज्वलन।

---

१. सामान्यत: जो आत्मा को कषती है अर्थात् दु:ख देती है, हिंसा करती है, उसे **कषाय** कहते हैं। यहाँ विशेषरूप से कषाय के अनन्तानुबन्धी आदि चार भेदों की अपेक्षा यह लक्षण बताया गया है। **(— तत्त्वार्थवार्तिक २/६)**

३.१२ ज्ञानमार्गणा और उसके भेद

प्रश्न ४०७ — ज्ञानमार्गणा के कितने भेद हैं?[१]

उत्तर — ज्ञानमार्गणा के **आठ** भेद हैं — मति, श्रुत, अवधि, मन:पर्यय, और केवलज्ञान तथा कुमति, कुश्रुत और कुअवधिज्ञान।

३.१३ संयममार्गणा और उसके भेद

प्रश्न ४०८ — संयम किसे कहते हैं?

उत्तर — अहिंसा आदि पाँच व्रतों के धारण करने, ईर्या आदि पाँच समितियों के पालन करने, क्रोध आदि कषायों के निग्रह करने, मनोयोग आदि तीन योगों के रोकने, स्पर्शन आदि पाँचों इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करने को **संयम** कहते हैं।

प्रश्न ४०९ — संयममार्गणा के कितने भेद हैं?

उत्तर — संयममार्गणा के **सात** भेद हैं — सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसाम्पराय, यथाख्यात, संयमासंयम, और असंयम।

३.१४ दर्शनमार्गणा और उसके भेद

प्रश्न ४१० — दर्शनमार्गणा के कितने भेद हैं?[२]

उत्तर — दर्शनमार्गणा के **चार** भेद हैं — चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन, और केवलदर्शन।

---

१. प्रश्न — ज्ञान किसे कहते हैं?

उत्तर — जिससे स्व-पर पदार्थों का विशेष प्रतिभास होता है, उसे **ज्ञान** कहते हैं। **(प्रश्न क्रमाङ्क ८२ भी देखें।)**

२. प्रश्न — दर्शन किसे कहते हैं?

उत्तर — जिससे स्व-पर पदार्थों का सामान्य प्रतिभास होता है, उसे **दर्शन** कहते हैं। **(प्रश्न क्रमाङ्क ८३ भी देखें।)**

३.१५ लेश्यामार्गणा और उसके भेद

प्रश्न ४११ – लेश्यामार्गणा के कितने भेद हैं?[१]

उत्तर – लेश्यामार्गणा के **छह** भेद हैं – कृष्ण, नील, कापोत, पीत, पद्म, और शुक्ल।

३.१६ भव्यमार्गणा और उसके भेद

प्रश्न ४१२ – भव्यमार्गणा के कितने भेद हैं?[२]

उत्तर – भव्यमार्गणा के **दो** भेद हैं – भव्य और अभव्य।

३.१७ सम्यक्त्वमार्गणा और उसके भेद

प्रश्न ४१३ – सम्यक्त्व किसे कहते हैं?

उत्तर – तत्त्वार्थश्रद्धान को **सम्यक्त्व** कहते हैं।

प्रश्न ४१४ – सम्यक्त्वमार्गणा के कितने भेद हैं?

उत्तर – सम्यक्त्वमार्गणा के **छह** भेद हैं – उपशमसम्यक्त्व, क्षयोपशमसम्यक्त्व, क्षायिकसम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सासादन और मिथ्यात्व।

३.१७ संज्ञीमार्गणा और उसके भेद

प्रश्न ४१५ – संज्ञी किसे कहते हैं?

उत्तर – जिस जीव में संज्ञा होती है, उसे **संज्ञी** कहते हैं।

प्रश्न ४१६ – संज्ञा किसे कहते हैं?

उत्तर – द्रव्यमन के निमित्त से शिक्षा आदि ग्रहण करने की बुद्धि को **संज्ञा** कहते हैं।

---

१. प्रश्न क्रमाङ्क ३५३ देखें।

२. प्रश्न क्रमाङ्क ११९ देखें।

प्रश्न ४१७ – संज्ञीमार्गणा के कितने भेद हैं?

उत्तर – संज्ञीमार्गणा के दो भेद हैं – संज्ञी और असंज्ञी।

३.१९ आहारकमार्गणा और उसके भेद

प्रश्न ४१८ – आहारक किसे कहते हैं?

उत्तर – औदारिक आदि शरीरों और छह पर्याप्तियों के योग्य पुद्गलों के ग्रहण करने को **आहारक** कहते हैं।

प्रश्न ४१९ – आहारकमार्गणा के कितने भेद हैं?

उत्तर – आहारकमार्गणा के दो भेद हैं – आहारक और अनाहारक।

प्रश्न ४२० – कौन-कौनसे जीव अनाहारक होते हैं?

उत्तर – विग्रहगति, केवली समुद्घात, अयोग केवली और सिद्ध अवस्था में जीव **अनाहारक** होता है।

३.२० विग्रहगति और उसके भेद

प्रश्न ४२१ – विग्रहगति किसे कहते हैं?

उत्तर – एक शरीर को छोड़कर दूसरे शरीर के प्रति जीव के गमन करने को **विग्रहगति** कहते हैं।

प्रश्न ४२२ – विग्रहगति में कौनसा योग होता है?

उत्तर – विग्रहगति में कार्मण काययोग होता है।

प्रश्न ४२३ – विग्रहगति के कितने भेद हैं?

उत्तर – विग्रहगति के **चार** भेद हैं – १. ऋजुगति, २. पाणिमुक्तागति, ३. लाङ्गलिकागति और ४. गोमूत्रिकागति।

प्रश्न ४२४ – इन विग्रहगतियों में जीव को कितना-कितना काल लगता है?

उत्तर – १. ऋजुगति में एक समय, २. पाणिमुक्तागति अर्थात्

एक मोड़े वाली गति में दो समय, ३. लाङ्गलिकागति अर्थात् दो मोड़े वाली गति में तीन समय, और ४. गोमूत्रिकागति अर्थात् तीन मोड़े वाली गति में चार समय लगते हैं।

प्रश्न ४२५ — चार प्रकार की विग्रहगतियों में अनाहारक अवस्था कितने समय तक रहती है?

उत्तर — संसारी जीव ऋजुगति में अनाहारक नहीं होता, पाणिमुक्तागति में एक समय, लाङ्गलिकागति में दो समय और गोमूत्रिकागति में तीन समय तक अनाहारक रहता है।

प्रश्न ४२६ — मोक्ष जानेवाले जीव की कौनसी गति होती है?

उत्तर — मोक्ष जानेवाले जीव की ऋजुगति होती है, परन्तु वह जीव अनाहारक ही होता है।

३.२१ जन्म और उसके भेद

प्रश्न ४२७ — जन्म कितने प्रकार का होता है?[1]

उत्तर — जन्म तीन प्रकार का होता है — उपपादजन्म, गर्भजन्म और सम्मूर्च्छनजन्म।

प्रश्न ४२८ — उपपादजन्म किसे कहते हैं?

उत्तर — जो जीव देवों की उपपाद शय्या तथा नारकियों के योनिस्थान में पहुँचते ही अन्तर्मुहूर्त में युवावस्था को प्राप्त हो जाते हैं, उनके जन्म को **उपपादजन्म** कहते हैं।

प्रश्न ४२९ — गर्भजन्म किसे कहते हैं?

---

१. प्रश्न — जन्म किसे कहते हैं?

उत्तर — जब कोई जीव एक गति छोड़कर दूसरी गति में जाता है तो दूसरी गति में जाकर यथायोग्य शरीर धारण करने को **जन्म** कहते हैं। **(— तत्त्वार्थवार्तिक ४/४२)**

उत्तर — माता-पिता के रज-वीर्य के मेल से जिनका शरीर बनता है, उनके जन्म को **गर्भजन्म** कहते हैं।

प्रश्न ४३० — सम्मूर्च्छनजन्म किसे कहते हैं?

उत्तर — जो जीव माता-पिता की अपेक्षा के बिना इधर-उधर के परमाणुओं को शरीररूप परिणमाता है, उनके जन्म को **सम्मूर्च्छनजन्म** कहते हैं।

प्रश्न ४३१ — किन-किन जीवों का कौन-कौनसा जन्म होता है?

उत्तर — देव-नारकियों का **उपपादजन्म;** जरायुज, अण्डज, पोत जीवों का **गर्भजन्म** और शेष जीवों का **सम्मूर्च्छनजन्म** ही होता है। जो योनि से निकलते ही भागने-दौड़ने लग जाते हैं और जिनके ऊपर जेर या झिल्ली आदि नहीं होती है, उन्हें **पोत** कहते हैं।

३.२२ लिङ्ग और उसके भेद

प्रश्न ४३२ — कौन-कौनसे जीवों का कौन-कौनसा लिङ्ग होता है?[1]

उत्तर — नारकी और सम्मूर्च्छन जीवों के नपुंसकलिङ्ग होता है, देवों के पुलिङ्ग और स्त्रीलिङ्ग होते हैं तथा शेष जीवों के तीनों लिङ्ग होते हैं।

३.२३ जीवसमास और भेद-प्रभेद

प्रश्न ४३३ — जीवसमास किसे कहते हैं?[2]

---

१. प्रश्न — लिङ्ग किसे कहते हैं?

उत्तर — सामान्यतया बाह्य चिह्न को लिङ्ग कहते हैं।

(प्रश्न क्रमाङ्क ४०३—४०४ देखें)

२. अनन्तानन्त संसारी जीव और उनके भेद-प्रभेदों का जिस विधि से संग्रह किया जाता है अथवा जहाँ जीव अच्छी तरह से रहते हैं, उन्हें **जीवसमास** कहते हैं।

(— धवला १/१, १८/१६०)

उत्तर — जीवों के रहने के स्थानों को **जीवसमास** कहते हैं।

प्रश्न ४३४ — जीवसमास के कितने भेद हैं?

उत्तर — एक अपेक्षा से जीवसमास के **९८** भेद हैं — तिर्यञ्चों के ८५, मनुष्यों के ९, नारकियों के २ और देवों के २।

प्रश्न ४३५ — तिर्यञ्चों के ८५ जीवसमास या भेद कौन-कौनसे हैं?

उत्तर — सम्मूर्च्छनजन्मवालों के ६९ और गर्भजन्मवालों के १६ — इस प्रकार तिर्यञ्चों के **८५** जीवसमास या भेद हैं।

प्रश्न ४३६ — सम्मूर्च्छनजन्मवाले तिर्यञ्चों के ६९ जीवसमास या भेद कौन-कौनसे हैं?

उत्तर — एकेन्द्रिय के ४२, विकलत्रय के ९ और सम्मूर्च्छन पञ्चेन्द्रिय के १८ — इस प्रकार सम्मूर्च्छन जन्मवाले तिर्यञ्चों के **६९** जीवसमास या भेद हैं।

प्रश्न ४३७ — एकेन्द्रिय के ४२ जीवसमास या भेद कौन -कौनसे हैं?

उत्तर — पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, नित्यनिगोद, और इतरनिगोद — इन छह भेदों के बादर और सूक्ष्म की अपेक्षा से १२ तथा सप्रतिष्ठित प्रत्येक और अप्रतिष्ठित प्रत्येक को मिलाने से १४ भेद हैं — इन चौदहों के पर्याप्तक, निर्वृत्त्यपर्याप्तक और लब्ध्यपर्याप्तक — इन तीनों की अपेक्षा से **४२** जीवसमास या भेद एकेन्द्रिय के होते हैं।

प्रश्न ४३८ — विकलत्रय के ९ जीवसमास या भेद कौन -कौनसे हैं?

उत्तर — द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय के पर्याप्तक, निर्वृत्यपर्याप्तक और लब्ध्यपर्याप्तक की अपेक्षा से **९** जीवसमास या भेद होते हैं।

प्रश्न ४३९ — सम्मूर्च्छन पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चों के १८ जीवसमास या भेद कौन-कौनसे हैं?

उत्तर — जलचर, थलचर और नभचर — इन तीनों पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चों के सैनी और असैनी की अपेक्षा से छह भेद होते हैं और इन छह भेदों के पर्याप्तक, निर्वृत्त्यपर्याप्तक और लब्ध्यपर्याप्तक की अपेक्षा से **१८** जीवसमास या भेद सम्मूर्च्छन पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चों के होते हैं।

प्रश्न ४४० — गर्भज पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चों के १६ जीवसमास या भेद कौन-कौनसे हैं?

उत्तर — गर्भज पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चों में कर्मभूमि के बारह और भोगभूमि के चार — इस प्रकार कुल **१६** जीवसमास या भेद हैं।

प्रश्न ४४१ — गर्भज पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चों में कर्मभूमि के १२ जीवसमास या भेद कौन-कौनसे हैं?

उत्तर — जलचर, थलचर और नभचर — इन तीनों के सैनी और असैनी के भेद से छह भेद होते हैं और इनके पर्याप्तक और निर्वृत्त्यपर्याप्तक की अपेक्षा **१२** जीवसमास या भेद गर्भज पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चों के होते हैं।

प्रश्न ४४२ — गर्भज पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चों में भोगभूमि के ४ जीवसमास या भेद कौन-कौनसे हैं?

उत्तर — थलचर और नभचर — इनके पर्याप्तक और निर्वृत्त्यपर्याप्तक की अपेक्षा **४** जीवसमास या भेद गर्भज पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चों में भोगभूमि के होते हैं। भोगभूमि में असैनी तिर्यञ्च नहीं होते।

प्रश्न ४४३ — मनुष्यों के ९ जीवसमास या भेद कौन -कौनसे हैं?

उत्तर — आर्यखण्ड, म्लेच्छखण्ड, भोगभूमि, और कुभोगभूमि — इन चारों गर्भज मनुष्यों के पर्याप्तक और निर्वृत्त्यपर्याप्तक की अपेक्षा आठ जीवसमास या भेद होते हैं, इनमें आर्यखण्ड के सम्मूर्च्छन मनुष्यों

का लब्ध्यपर्याप्तक भेद मिलाने से कुल **९** जीवसमास या भेद मनुष्यों के होते हैं।

प्रश्न ४४४ — नारकियों के २ जीवसमास या भेद कौन-कौनसे हैं?

उत्तर — नारकियों के पर्याप्तक और निर्वृत्त्यपर्याप्तक — ये **२** जीवसमास या भेद होते हैं।

प्रश्न ४४५ — देवों के २ जीवसमास या भेद कौन-कौनसे हैं?

उत्तर — देवों के पर्याप्तक और निर्वृत्त्यपर्याप्तक — ये **२** जीवसमास या भेद होते हैं।

प्रश्न ४४६ — देवों के विशेष भेद कितने हैं?

उत्तर — देवों के विशेष **चार** भेद हैं — भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक।

प्रश्न ४४७ — भवनवासी देवों के कितने भेद हैं?

उत्तर — भवनवासी देवों के **दस** भेद हैं — असुरकुमार, नागकुमार, विद्युत्कुमार, सुपर्णकुमार, अग्निकुमार, वातकुमार, स्तनितकुमार, उदधिकुमार, द्वीपकुमार और दिक्कुमार।

प्रश्न ४४८ — व्यन्तर देवों के कितने भेद हैं?

उत्तर — व्यन्तर देवों के **आठ** भेद हैं — किन्नर, किंपुरुष, महोरग, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, भूत और पिशाच।

प्रश्न ४४९ — ज्योतिषी देवों के कितने भेद हैं?

उत्तर — ज्योतिषी देवों के **पाँच** भेद हैं — सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह, नक्षत्र, और तारे।

प्रश्न ४५० — वैमानिक देवों के कितने भेद हैं?

उत्तर — वैमानिक देवों के **दो** भेद हैं — कल्पोपपन्न देव और कल्पातीत देव।

प्रश्न ४५१ — कल्पोपपन्न देव किसे कहते हैं?

उत्तर — जहाँ इन्द्र आदि की कल्पना होती है, उसे **कल्प** कहते हैं और जो कल्प में उत्पन्न होते हैं, उन्हें **कल्पोपपन्न देव** कहते हैं।

प्रश्न ४५२ — कल्पातीत देव किन्हें कहते हैं?

उत्तर — जहाँ इन्द्र आदि की कल्पना नहीं होती अथवा जो कल्प से परे हैं, उन्हें **कल्पातीत देव** कहते हैं।

प्रश्न ४५३ — कल्पोपपन्न देवों के कितने भेद हैं?

उत्तर — कल्पोपपन्न देवों के स्वर्गों की अपेक्षा **१६** (आठ जोड़ियाँ) भेद हैं — सौधर्म, ऐशान; सानत्कुमार, माहेन्द्र; ब्रह्म, ब्रह्मोत्तर; लान्तव, कापिष्ठ; शुक्र, महाशुक्र; शतार, सहस्रार; आनत, प्राणत; आरण और अच्युत।[१]

प्रश्न ४५४ — कल्पातीत देवों के कितने भेद हैं?

उत्तर — कल्पातीत देवों के **२३** भेद हैं — ९ ग्रैवेयक, ९ अनुदिश और ५ अनुत्तर (विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित और सवार्थसिद्धि)।[२]

प्रश्न ४५५ — नारकियों के विशेष भेद कितने हैं?

उत्तर — अधोलोक में पृथिवियों की अपेक्षा नारकियों के **७** भेद हैं।

---

१. इन्द्रों की अपेक्षा वैमानिक देवों के १२ ही भेद हैं, क्योंकि १६ स्वर्गों में से ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर, लान्तव-कापिष्ठ, शुक्र-महाशुक्र और सतार-सहस्रार स्वर्ग के जोड़ों में एक-एक इन्द्र ही होते हैं।

२. इनमें इन्द्र आदि की कल्पना नहीं होने से सभी देव अहमिन्द्र होते हैं।

प्रश्न ४५६ — अधोलोक की सात पृथिवियों के नाम क्या-क्या हैं?

उत्तर — अधोलोक की सात पृथिवियों के नाम निम्न हैं — रत्नप्रभा (घम्मा), शर्कराप्रभा (वंशा), बालुकाप्रभा (मेघा), पंकप्रभा (अञ्जना), धूमप्रभा (अरिष्टा), तमःप्रभा (मघवी) और महातमःप्रभा (माघवी)।[1]

---

१. मेरुतल के नीचे का क्षेत्र **अधोलोक** है। यह वेत्रासन के आकारवाला है। यह सात राजू ऊँचा और सात राजू मोटा है तथा नीचे सात राजू व ऊपर एक राजू प्रमाण चौड़ा है। अधोलोक में नीचे-नीचे सात पृथिवियाँ हैं, जो लगभग एक राजू अन्तराल से स्थित हैं। प्रत्येक पृथिवी में क्रमशः १३, ११, ९, ७, ५, ३, १ पटल हैं। ये पटल १००० योजन अन्तराल से अवस्थित हैं। कुल पटल ४९ हैं। प्रत्येक भूमि क्रमशः घनाम्बुवातवलय, घनवातवलय, तनुवातवलय और आकाश के आधार पर उत्तरोत्तर प्रतिष्ठित हैं।

प्रथम रत्नप्रभा नामक पृथिवी के तीन भाग हैं — खरभाग, पङ्कभाग और अब्बहुलभाग। प्रथम खरभाग, चित्रा, लोहिताङ्क आदि १६ प्रस्तरों में विभक्त है। प्रत्येक प्रस्तर १००० योजन मोटा है। चित्रा नामक प्रथम प्रस्तर अनेक रत्नों और धातुओं की खान है; अतः इस सम्पूर्ण पृथिवी का नाम रत्नप्रभा है। खर और पङ्क भाग में भवनवासी देवों तथा व्यन्तर देवों के भवन हैं। व्यन्तर देवों के निवास सम्पूर्ण मध्यलोक में भी पुर, भवन, आवास के रूप में फैले हुए हैं। सातों पृथिवियों के नीचे अन्त में एक राजू प्रमाण क्षेत्र में कलकलपृथ्वी है, जहाँ नित्य निगोदिया जीव रहते हैं।

इन सात भूमियों के पटलों में क्रमशः तीस लाख, पच्चीस लाख, पन्द्रह लाख, दस लाख, तीन लाख, पाँच कम एक लाख और पाँच नरक या बिल हैं अर्थात् कुल नरकों की संख्या ८४ लाख है। प्रत्येक पटल का मध्यवर्ती बिल इन्द्रक कहलाता है। इसकी चारों दिशाओं व विदिशाओं में एकश्रेणी में अवस्थित बिल श्रेणीबद्ध कहलाते हैं और इनके बीच में रत्नराशिवत् बिखरे हुए बिल प्रकीर्णक कहलाते हैं।

इन बिलों में नारकी जीव रहते हैं। इनमें रहनेवाले नारकी क्रमशः निरन्तर अशुभतर लेश्या, परिणाम, देह, वेदना और विक्रियावाले हैं। परस्पर एक-दूसरे को दुःख उत्पन्न करते हैं तथा तीसरी भूमि के अन्त तक संक्लेश परिणामवाले असुरकुमार जाति के देवों के द्वारा भी उनमें दुःख उत्पन्न किए जाते हैं। नारकियों की उत्कृष्ट आयु क्रमशः एक, तीन, सात, दश, सतरह, बाईस और तैंतीस सागर है, जबकि उनकी जघन्य आयु क्रमशः दस हजार वर्ष तथा एक, तीन, सात, दश, सतरह और बाईस सागर हैं। **(— तत्त्वार्थसूत्र, तृतीय अध्याय, सूत्र १–६)**

प्रश्न ४५७ — सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवों के रहने का स्थान कहाँ है?

उत्तर — सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवों के रहने का स्थान **सर्व लोक** है।

प्रश्न ४५८ — बादर एकेन्द्रिय जीव कहाँ रहते हैं?

उत्तर — बादर एकेन्द्रिय जीव किसी भी आधार का निमित्त पाकर निवास करते हैं।

प्रश्न ४५९ — त्रस जीव कहाँ रहते हैं?

उत्तर — त्रस जीव **त्रस नाली** में ही रहते हैं।

प्रश्न ४६० — विकलत्रय जीव कहाँ रहते हैं?

उत्तर — विकलत्रय जीव कर्मभूमियों में और अन्तिम आधे द्वीप तथा सम्पूर्ण स्वयंभूरमण समुद्र में रहते हैं।

प्रश्न ४६१ — पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च कहाँ-कहाँ रहते हैं?

उत्तर — पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च मध्यलोक में रहते हैं, परन्तु जलचर तिर्यञ्च लवण समुद्र, कालोदधि समुद्र और स्वयंभूरमण समुद्र के अलावा अन्य समुद्रों में नहीं हैं।

प्रश्न ४६२ — नारकी जीव कहाँ रहते हैं?

उत्तर — नारकी जीव अधोलोक की सात पृथिवियों के (८४ लाख) नरक-बिलों में रहते हैं।

प्रश्न ४६३ — भवनवासी और व्यन्तर देव कहाँ रहते हैं?

उत्तर — भवनवासी और व्यन्तर देव अधोलोक की पहली रत्नप्रभा पृथ्वी के खरभाग और पङ्कभाग में तथा मध्यलोक में सर्वत्र रहते हैं।

प्रश्न ४६४ — ज्योतिषी देव कहाँ रहते हैं?

उत्तर — पृथ्वी से सात सौ नब्बे (७९०) योजन की ऊँचाई से लगाकर नौ सौ (९००) योजन की ऊँचाई तक अर्थात् एक सौ दश (११०) योजन आकाश में एक राजू प्रमाण सम्पूर्ण **मध्यलोक** में

ज्योतिषी देव निवास करते हैं।

प्रश्न ४६५ – वैमानिक देव कहाँ रहते हैं?

उत्तर – वैमानिक देव **ऊर्ध्वलोक** में रहते हैं।

प्रश्न ४६६ – मनुष्य कहाँ रहते हैं?

उत्तर – मनुष्य, मनुष्यलोक (अढ़ाई द्वीप) में रहते हैं।

३.२४ लोक और उसके विभाग

प्रश्न ४६७ – लोक के कितने भाग हैं?

उत्तर – लोक के तीन भाग हैं – ऊर्ध्वलोक, मध्यलोक और अधोलोक।

प्रश्न ४६८ – अधोलोक कहाँ है?

उत्तर – मेरुपर्वत के नीचे सात राजू प्रमाण **अधोलोक** है।

प्रश्न ४६९ – ऊर्ध्वलोक कहाँ है?[१]

---

१. सुमेरुपर्वत की चोटी के ऊपर लोक-शिखरपर्यन्त **उर्ध्वलोक** है। नाप के हिसाब से यह प्रमाण ७ राजू में १०००४० योजन कम है। उर्ध्वलोक के दो विभाग हैं – स्वर्गलोक और सिद्धलोक। स्वर्गलोक में ऊपर-ऊपर स्वर्ग पटल स्थित हैं – इन पटलों के दो विभाग हैं – कल्प पटल और कल्पातीत पटल। कल्प पटलों के आठ युगलों में सोलह कल्प हैं। सौधर्म-ईशान; सनत्कुमार-महेन्द्र; ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर; लान्तव-कापिष्ठ; शुक्र- महाशुक्र; शतार-सहस्रार; आनत-प्राणत और आरण-अच्युत। पहले युगल में २१, दूसरे युगल में ६, तीसरे युगल में ४, चौथे युगल में २, पाँचवें युगल में १, छठवें युगल में १, सातवें युगल में ३, आठवें युगल में ३; इसप्रकार कुल ५२ कल्प पटल हैं। इनमें इन्द्र, सामानिक आदि दश-दश जाति के देव रहते हैं। इन बावन पटलों के ऊपर कल्पातीत पटल हैं, जिनमें नव ग्रैवेयक के ९, नव अनुदिश का १, पञ्च अनुतर का १, इसप्रकार कुल ११ कल्पातीत पटल हैं। कल्प और कल्पातीत पटलों को मिलाने पर कुल ६३ पटल हैं। इन ६३ पटलों के नाम भी तिलोयपण्णत्ति, हरिवंशपुराण, त्रिलोकसार, राजवार्तिक आदि ग्रन्थों से जानना चाहिए। ये सभी पटल लाखों योजनों के अन्तराल से ऊपर-ऊपर स्थित हैं। प्रत्येक पटल में विमान हैं, जो तीन प्रकार के हैं – इन्द्रक, श्रेणीबद्ध और प्रकीर्णक। यह सब रचना लोकशिखर से २९ योजन ४२५ धनुष नीचे तक है, यह **स्वर्गलोक** कहलाता है। इसके ऊपर लोकशिखर पर **सिद्धलोक** है। इसके आगे लोक का अन्त हो जाता है। **(– जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश, भाग ३, पृष्ठ ४४४)**

उत्तर – मेरुपर्वत के ऊपर लोक के अन्त पर्यन्त **ऊर्ध्वलोक** है।

प्रश्न ४७० – मध्यलोक कहाँ है?

उत्तर – एक लाख चालीस (१,०००,४०) योजन मेरुपर्वत की ऊँचाई के बराबर **मध्यलोक** है।

प्रश्न ४७१ – मध्यलोक का विशेष स्वरूप क्या है?

उत्तर – मध्यलोक के अत्यन्त बीच में एक लाख योजन चौड़ाईवाला थाली के समान गोल **जम्बूद्वीप** है। जम्बूद्वीप के बीच में एक लाख चालीस योजन ऊँचा **सुमेरुपर्वत** है, जिसकी एक हजार योजन जमीन के भीतर **मूल** है, जो निन्याणवे हजार योजन **पृथ्वी के ऊपर** है और जिसकी चालीस योजन की **चूलिका (चोटी)** है।

जम्बूद्वीप के बीच में पश्चिम-पूर्व की तरफ लम्बायमान **छह कुलाचल** पर्वत हैं, जिनसे जम्बूद्वीप के **सात खण्ड** (क्षेत्र या वर्ष) हैं। इन सातों खण्डों के नाम इस प्रकार हैं – १. भरत, २. हैमवत, ३. हरि, ४. विदेह, ५. रम्यक, ६. हैरण्यवत और ७. ऐरावत। विदेहक्षेत्र में (गजदन्त पर्वतों के बीच में) सुमेरु पर्वत से उत्तर की तरफ **उत्तरकुरु** और दक्षिण की तरफ **देवकुरु** हैं।

जम्बूद्वीप के चारों तरफ वलय के आकारवाला खाई की तरह घेरे हुए दो लाख योजन चौड़ाईवाला **लवणसमुद्र** है। लवणसमुद्र को चारों तरफ से घेरे हुए चार लाख योजन चौड़ाई वाला **धातकीखण्डद्वीप** है। इस धातकीखण्डद्वीप में पूर्व और पश्चिम दिशा में दो मेरुपर्वत हैं। प्रत्येक मेरु सम्बन्धी क्षेत्र, कुलाचल आदि की सब रचना जम्बूद्वीप के समान, परन्तु अधिक विस्तारवाली रचना है।

धातकीखण्डद्वीप को चारों तरफ घेरे हुए आठ लाख योजन

विस्तारवाला कालोदधि समुद्र है और कालोदधि को घेरे हुए सोलह लाख योजन विस्तारवाला **पुष्करवरद्वीप** है।

पुष्करवरद्वीप के बीचों-बीच वलय के आकारवाला, पृथ्वी पर एक हजार बाईस योजन चौड़ाईवाला, बीच में सात सौ तेईस योजन चौड़ाईवाला और ऊपर चार सौ चौबीस योजन चौड़ाईवाला तथा सतरह सौ इक्कीस योजन ऊँचाईवाला तथा जमीन के भीतर जिस की जड़ चार सौ सवा तीस योजन है — ऐसा **मानुषोत्तर** नामक पर्वत है, जिससे पुष्करवरद्वीप के दो खण्ड हो जाते हैं। पुष्करवरद्वीप के पहले अर्द्ध भाग में धातकीखण्डद्वीप के समान, परन्तु अधिक विस्तारवाली सब रचना है।

इस प्रकार जम्बूद्वीप, लवणोदधिसमुद्र, धातकीखण्डद्वीप, कालोदधिसमुद्र और पुष्करार्द्धद्वीप — इतने क्षेत्र को **नरलोक** या **मनुष्यलोक** कहते हैं।

पुष्करद्वीप से आगे परस्पर एक दूसरे को वलयाकार में घेरे हुए दूने-दूने विस्तारवाले मध्यलोक के अन्त पर्यन्त **असंख्यात द्वीप और समुद्र** हैं।

पाँच मेरु से सम्बन्धित पाँच भरत, पाँच ऐरावत, देवकुरु और उत्तरकुरु को छोड़कर पाँच विदेह — इस प्रकार सब मिलाकर **पन्द्रह कर्मभूमियाँ** हैं। पाँच हैमवत और पाँच हैरण्यवत — इन दश क्षेत्रों में **जघन्य भोगभूमियाँ** हैं, पाँच हरि और पाँच रम्यक — इन दश क्षेत्रों में **मध्यम भोगभूमियाँ** हैं तथा पाँच देवकुरु और पाँच उत्तरकुरु — इन दश क्षेत्रों में **उत्तम भोगभूमियाँ** हैं।

जहाँ पर असि, मसि, कृषि, विद्या, वाणिज्य, और शिल्प — इन षट्कर्मों की प्रवृत्ति होती है, उसे **कर्मभूमि** कहते हैं। जहाँ इनकी प्रवृति नहीं होती है, उसे **भोगभूमि** कहते हैं।

मनुष्यक्षेत्र से बाहर के समस्त द्वीपों में जघन्य भोगभूमि के समान रचना है, किन्तु अन्तिम स्वयंभूरमण द्वीप के उत्तरार्द्ध तथा समस्त स्वयंभूरमण समुद्र में और चारों कोनों की पृथिवियों में कर्मभूमि के समान रचना है। लवणसमुद्र और कालोदधि समुद्र में ९६ अन्तर्द्वीप हैं, इसी प्रकार विदेहक्षेत्रों की १६० कर्मभूमियों के मध्य ५६-५६ अन्तर्द्वीप हैं; इन सर्व अन्तर्द्वीपों में कुभोगभूमि की रचना है, वहाँ कुमनुष्य ही रहते हैं, उनमें मनुष्यों की नाना प्रकार की कुत्सित आकृतियाँ हैं।[१]

।। इति तृतीयोऽयायः समाप्तः।।[२]

---

१. जिनागम में **मध्यलोक** के असंख्यात द्वीप-समुद्रों में से जम्बूद्वीप से प्रारम्भ होकर सोलह द्वीप-समुद्रों के नाम निम्नप्रकार हैं — १. जम्बूद्वीप—लवणसमुद्र; २. धातकीखण्डद्वीप—कालोदधिसमुद्र; ३. पुष्करवरद्वीप—पुष्करवरसमुद्र; ४. वारुणीवरद्वीप—वारुणीवरसमुद्र; ५. क्षीरवरद्वीप—क्षीरवरसमुद्र; ६. धृतवरद्वीप—धृतवरसमुद्र; ७. इक्षुवरद्वीप—इक्षुवरसमुद्र; ८. नन्दीश्वरद्वीप—नन्दीश्वरसमुद्र; ९. अरुणीवरद्वीप—अरुणीवरसमुद्र; १०. अरुणाभासद्वीप—अरुणाभाससमुद्र; ११. कुण्डलवरद्वीप—कुण्डलवरसमुद्र; १२. शंखवरद्वीप—शंखवरसमुद्र; १३. रुचकवरद्वीप—रुचकवरसमुद्र; १४. भुजगवरद्वीप—भुजगवरसमुद्र; १५. कुशवरद्वीप—कुशवरसमुद्र; १६. क्रौंचवरद्वीप—क्रौंचवरसमुद्र।

इसी प्रकार अन्तिम स्वयंभूरमण समुद्र से प्रारम्भ होकर सोलह समुद्र-द्वीपों के नाम निम्नप्रकार हैं — १. स्वयंभूरमणसमुद्र—स्वयंभूरमणद्वीप; २. अहीन्द्रवरसमुद्र—अहीन्द्रवरद्वीप; ३. देववरसमुद्र—देववरद्वीप; ४. यक्षवरसमुद्र—यक्षवरद्वीप; ५. भूतवरसमुद्र—भूतवरद्वीप; ६. नागवरसमुद्र—नागवरद्वीप; ७. वैड्र्यसमुद्र—वैड्र्यद्वीप; ८. वज्रवरसमुद्र—वज्रवरद्वीप; ९. काञ्चनसमुद्र—काञ्चनद्वीप; १०. रुप्यवरसमुद्र—रुप्यवरद्वीप; ११. हिंगुलसमुद्र—हिंगुलद्वीप; १२. अञ्जनवरसमुद्र—अञ्जनवर द्वीप; १३. श्यामसमुद्र—श्यामद्वीप; १४. सिन्दूरसमुद्र—सिन्दूरद्वीप; १५. हरितासमुद्र—हरितासद्वीप; १६. मनःशिलसमुद्र—मनःशिलद्वीप। हरिवंशपुराण, त्रिलोकसार आदि ग्रन्थों में कुछ समुद्रों के रसों का भी वर्णन किया गया है। उक्त द्वीप-समुद्रों की अनेक विशेषताओं का वर्णन भी वहाँ से जानना चाहिए। **(— जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश, भाग ३, पृष्ठ ४७०)**

२. वरैयाजी ने **'जैन जागरकी' नामक एक विस्तृत लेख लिखा है, जिसमें तीन लोक का वर्णन किया गया है। (स्मृतिग्रन्थ, पृष्ठ २४३—२५२ देखें।)**

धन्य मुनिदशा

मुनि इन्द्रिय-विषयों से उपेक्षित होकर सदाकाल ज्ञान, ध्यान और तपश्चरण में लीन रहते हैं। आहार के वास्ते किसी से याचना नहीं करते। भोजन के समय गृहस्थों के घर जहाँ तक किसी को जाने की मनाही नहीं है, वहाँ तक जाते हैं। बिजली के चमत्कारवत् दर्शन देकर यदि किसी ने भक्तिपूर्वक भोजनार्थ तिष्ठने के लिए प्रार्थना नहीं की तो तत्काल वापिस लौट जाते हैं। दिन में केवल एक बार ही एक स्थान में खड़े होकर अन्न-जल का ग्रहण करते हैं।

समस्त पदार्थों से ममत्वरहित केवल शरीरमात्र परिग्रहसहित नग्न दिगम्बर मुद्रा को धारण करते हुए बिना सवारी पैदल पाँव अनेक देशों में विहार करते हुए भव्य जीवों को धर्मोपदेश देकर स्व-पर का कल्याण करते हैं। शरीर से ममत्व न होने के कारण अनेक रोग आने पर भी रोग का इलाज नहीं करते। पैर में काँटा लग जाए तो उसको भी नहीं निकालते।

पत्थर-सुवर्ण को समान समझते हैं, स्तुति तथा निन्दा करनेवालों को समदृष्टि से देखते हैं, शत्रु और मित्र जिनके लिए समान हैं। यदि कोई दुष्ट आकर उनको कष्ट देवे तो समभाव धारण करके ध्यान में लीन हो जाते हैं और जब तक वह उपसर्ग दूर नहीं हो, तब तक उस स्थान से नहीं उठते।

केश-लुञ्चन अपने हाथों से करते हैं। दन्त-धोवन तथा स्नान की तरफ जिनका कभी उपयोग ही नहीं जाता। ध्यान में ही जिनका समस्त काल व्यतीत होता है। कदाचित् निद्रा की बाधा होने पर भूमि पर किञ्चित् काल के लिए शयनकर पुन: ज्ञान-ध्यान में लीन हो जाते हैं।

— गुरुवर्य गोपालदास वरैया

'सार्वधर्म' (लेख), स्मृति-ग्रन्थ, पृष्ठ २४१)

चतुर्थ अध्याय

मुक्ति के सोपान

(दोहा)

गुणस्थान की वृद्धि को, जान मुक्ति-सोपान।
शीघ्र मिले निर्वाण पद, निश्चय से यह मान।।

प्रश्न ४७२ — संसार में समस्त प्राणी सुख को चाहते हैं और सुख का ही उपाय करते हैं, फिर भी सुख को प्राप्त क्यों नहीं होते?

उत्तर — संसारी जीव असली सुख का स्वरूप और उसका उपाय न तो जानते हैं और न उसका साधन करते हैं, इसलिए सुख को प्राप्त नहीं होते।

प्रश्न ४७३ — असली सुख का क्या स्वरूप है?

उत्तर — आह्लाद स्वरूप जीव के अनुजीवीगुण को **असली सुख** कहते हैं, यही जीव का विशेष स्वभाव है, परन्तु संसारी जीवों ने भ्रमवश साता वेदनीयकर्म के उदयजनित साता परिणाम (असली सुख की वैभाविक परिणति) को ही सुख मान रखा है।

प्रश्न ४७४ — संसारी जीव को असली सुख क्यों नहीं मिलता है?

उत्तर — कर्मोदय के निमित्त से उस सुख का घात हो रहा है, इस कारण संसारी जीव को असली सुख नहीं मिलता है।

प्रश्न ४७५ — संसारी जीव को असली सुख कब मिल सकता है?

उत्तर — संसारी जीव को असली सुख **मोक्ष होने** पर मिल सकता है।

प्रश्न ४७६ – मोक्ष का स्वरूप क्या है?

उत्तर – आत्मा से समस्त कर्मों के विप्रमोक्ष (अत्यन्त वियोग) को **मोक्ष** कहते हैं।

प्रश्न ४७७ – मोक्ष की प्राप्ति का उपाय क्या है?

उत्तर – मोक्ष की प्राप्ति का उपाय **संवर और निर्जरा** है।

प्रश्न ४७८ – संवर किसे कहते हैं?

उत्तर – आस्रव के निरोध को संवर कहते हैं अर्थात् नवीन कर्मों का आत्मा के साथ सम्बन्ध न होना, **संवर** है।

प्रश्न ४७९ – निर्जरा किसे कहते हैं?

उत्तर – आत्मा से पूर्वबद्ध कर्मों का एकदेश वियोग होना, **निर्जरा** है।

प्रश्न ४८० – संवर और निर्जरा होने का उपाय क्या है?

उत्तर – सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र – इन तीनों पूर्ण गुणों की एकता ही संवर और निर्जरा होने का उपाय है।[1]

प्रश्न ४८१ – इन तीनों पूर्ण गुणों की एकता युगपत् होती है या क्रम से?

उत्तर – इन तीनों पूर्ण गुणों की एकता क्रम से होती है।

---

१. यहाँ पर 'पूर्ण गुणों की एकता' – ऐसा बारम्बार कहा गया है। उसका तात्पर्य यह है कि सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र की पूर्णता होने पर ही मोक्षमार्ग की वास्तविक पूर्णता होती है, तभी साक्षात् केवलज्ञान या मोक्ष की प्राप्ति होती है; अपूर्ण एकता साक्षात् केवलज्ञान या मोक्ष का कारण नहीं है, वह परम्परा से केवलज्ञान या मोक्ष का कारण है। सम्यग्दर्शन में क्षायिक सम्यग्दर्शन को, सम्यग्ज्ञान में केवलज्ञान को तथा सम्यक्चारित्र में यथाख्यातचारित्र को पूर्ण माना गया है। केवलज्ञान के बाद परमयथाख्यातचारित्र होने पर ही मोक्ष होता है।

प्रश्न ४८२ – इन तीनों पूर्ण गुणों की एकता होने का क्रम किस प्रकार है?

उत्तर – जैसे-जैसे गुणस्थान बढ़ते जाते हैं, वैसे-वैसे ही ये गुण भी बढ़ते हुए अन्त में पूर्ण होते हैं।

प्रश्न ४८३ – गुणस्थान किसे कहते हैं?

उत्तर – मोह और योग के निमित्त से आत्मा के सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्ररूप गुणों की तारतम्यरूप (उत्तरोत्तर वृद्धिङ्गत) अवस्था-विशेष को **गुणस्थान** कहते हैं।

प्रश्न ४८४ – गुणस्थान के कितने भेद हैं?

उत्तर – गुणस्थान के **चौदह** भेद हैं – १. मिथ्यात्व, २. सासादन, ३. मिश्र, ४. अविरतसम्यग्दृष्टि, ५. देशविरत, ६. प्रमत्तविरत, ७. अप्रमत्तविरत, ८. अपूर्वकरण, ९. अनिवृत्तिकरण, १०. सूक्ष्मसाम्पराय, ११. उपशान्तमोह, १२. क्षीणमोह, १३. सयोगकेवली और १४. अयोगकेवली।

प्रश्न ४८५ – गुणस्थानों के इन नामों का कारण कौन है?

उत्तर – गुणस्थानों के इन नामों का कारण मोहनीयकर्म और योग है।

प्रश्न ४८६ – किस-किस गुणस्थान के क्या-क्या निमित्त हैं?

उत्तर – शुरु के चार गुणस्थान तो **दर्शनमोहनीयकर्म के निमित्त** से होते हैं, पाँचवें गुणस्थान से बारहवें गुणस्थान पर्यंत आठ गुणस्थान **चारित्रमोहनीयकर्म के निमित्त** से होते हैं तथा तेरहवाँ और चौदहवाँ – ये दो गुणस्थान **योग के निमित्त** से होते हैं।

पहला, मिथ्यात्व गुणस्थान दर्शनमोहनीय कर्म के उदय से होता है, इसमें आत्मा के परिणाम मिथ्यात्वरूप होते हैं।

चौथा, अविरतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान दर्शनमोहनीयकर्म के उपशम, क्षय अथवा क्षयोपशम से होता है। इस गुणस्थान में आत्मा के सम्यग्दर्शनगुण का प्रादुर्भाव हो जाता है।

तीसरा, मिश्र गुणस्थान सम्यक्-मिथ्यात्व नामक दर्शनमोहनीयकर्म की प्रकृति के उदय से होता है। इस गुणस्थान में आत्मा के परिणाम सम्यक्-मिथ्यात्व अर्थात् उभयरूप होते हैं।

पहले गुणस्थान में औदयिकभाव, चौथे गुणस्थान में औपशमिक, क्षायिक अथवा क्षायोपशमिकभाव और तीसरे गुणस्थान में औदयिकभाव होते हैं।[१]

दूसरा, सासादन गुणस्थान दर्शनमोहनीयकर्म के उदय, उपशम, क्षय और क्षयोपशम – इन चार अवस्थाओं में से किसी भी अवस्था की अपेक्षा नहीं रखता है; इसलिए यहाँ पर दर्शनमोहनीयकर्म की अपेक्षा पारिणामिकभाव है, किन्तु अनन्तानुबन्धीरूप चारित्रमोहनीयकर्म का उदय होने से इस गुणस्थान में चारित्रमोहनीयकर्म की अपेक्षा औदयिकभाव भी कहा जा सकता हैं। इस गुणस्थान में अनन्तानुबन्धी के उदय से सम्यक्त्व का घात हो गया है, इसलिए यहाँ सम्यक्त्व नहीं है लेकिन मिथ्यात्व का उदय भी नहीं आया है, इसलिए मिथ्यात्व परिणाम भी नहीं है। अतएव यह गुणस्थान मिथ्यात्व और सम्यक्त्व की अपेक्षा से अनुदयरूप है।

---

१. यद्यपि इस गुणस्थान में सम्यक्-मिथ्यात्वप्रकृति का उदय होने से यहाँ औदयिकभाव कहा है, तथापि षट्खण्डागम, गोम्मटसार, राजवार्तिक आदि ग्रन्थों में इस गुणस्थान के भाव को पाँचवें गुणस्थान के समान जात्यन्तररूप क्षायोपशमिकभाव माना है, क्योंकि यहाँ अभी सम्यक्श्रद्धान का पूर्ण अभाव नहीं हुआ है।

(– धवला, १/१,१,११/१६८)

पाँचवें, देशविरत गुणस्थान से दशवें, सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान तक छह गुणस्थान चारित्रमोहनीयकर्म के क्षयोपशम से होते हैं, इसलिए इन गुणस्थानों में क्षायोपशमिकभाव होते हैं। इन गुणस्थानों में सम्यक्चारित्रगुण की क्रम से वृद्धि होती जाती है।

ग्यारहवाँ, उपशान्तमोह गुणस्थान चारित्रमोहनीयकर्म के उपशम से होता है, इसलिए ग्यारहवें गुणस्थान में औपशमिकभाव होता है। यद्यपि यहाँ पर चारित्रमोहनीयकर्म का पूर्णतया उपशम हो जाता है, तथापि योग का सद्भाव होने से पूर्ण चारित्र नहीं है; क्योंकि सम्यक्चारित्र के लक्षण में 'योग और कषाय के अभाव से सम्यक्चारित्र होता है' – ऐसा लिखा है।

बारहवाँ, क्षीणमोह गुणस्थान चारित्रमोहनीयकर्म के क्षय से होता है, इसलिए यहाँ क्षायिकभाव होता है। इस गुणस्थान में भी ग्यारहवें गुणस्थान के समान सम्यक्चारित्र की पूर्णता नहीं है।

सम्यग्ज्ञानगुण यद्यपि चौथे गुणस्थान में ही प्रगट हो जाता है। तात्पर्य यह है कि यद्यपि आत्मा का ज्ञानगुण (मति-श्रुतज्ञान के रूप में) अनादिकाल से प्रवाहरूप चला आ रहा है, तथापि दर्शनमोहनीय कर्म का उदय होने से वह ज्ञान मिथ्यारूप था, परन्तु चौथे गुणस्थान में जब दर्शनमोहनीयकर्म के उदय का अभाव हो जाता है, तब वही आत्मा का ज्ञानगुण, सम्यग्ज्ञान कहलाने लगता है।

पञ्चम-षष्ठम आदि गुणस्थानों में तपश्चरणादि के निमित्त से अवधिज्ञान-मन:पर्ययज्ञान भी किसी-किसी जीव के प्रगट हो जाते हैं, तथापि केवलज्ञान के बिना सम्यग्ज्ञान की पूर्णता नहीं होती, इसलिए इस बारहवें गुणस्थान में यद्यपि सम्यग्दर्शन की पूर्णता हो गई है (क्योंकि क्षायिकसम्यक्त्व के बिना क्षपकश्रेणी नहीं चढ़ता और क्षपकश्रेणी के

बिना बारहवाँ गुणस्थान नहीं होता), तथापि सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रगुण अभी तक अपूर्ण हैं, इसीलिए बारहवें गुणस्थान से भी मोक्ष नहीं होता।

तेरहवाँ, सयोगकेवली गुणस्थान योगों के सद्भाव की अपेक्षा कहा गया है, इसीलिए यह सयोग है और केवलज्ञान के कारण इसका नाम सयोगकेवली है। इस गुणस्थान में सम्यग्ज्ञान की पूर्णता हो जाती है, परन्तु चारित्रगुण की पूर्णता नहीं होने से मोक्ष नहीं होता।

चौदहवाँ, अयोगकेवली गुणस्थान योगों के अभाव की अपेक्षा रखता है, इसलिए इसका नाम अयोगकेवली है। इस गुणस्थान में सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र – इन तीनों गुणों की पूर्णता हो जाती है; अतएव मोक्ष भी अब दूर नहीं रहा अर्थात् अ इ उ ऋ लृ – इन पाँच ह्रस्व स्वरों के उच्चारण करने में जितना काल लगता है, उतने ही काल में मोक्ष हो जाता है।

प्रश्न ४८७ – मिथ्यात्व गुणस्थान किसे कहते हैं?

उत्तर – मिथ्यात्व प्रकृति के उदय से अतत्त्वार्थ-श्रद्धानरूप आत्मा के विशेष परिणाम को **मिथ्यात्व गुणस्थान** कहते हैं।

मिथ्यात्व गुणस्थान में रहनेवाला जीव विपरीत श्रद्धान करता है और सच्चे धर्म की तरफ उसकी रुचि नहीं होती। जैसे पित्त-ज्वरवाले रोगी को दुग्ध आदि रस कटुक (कडवे) लगते हैं, उसी प्रकार इसको भी समीचीन धर्म अच्छा नहीं लगता।

प्रश्न ४८८ – मिथ्यात्व गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों का बन्ध हो सकता है?

उत्तर – अभेद विवक्षा से कर्म की १४८ प्रकृतियों में से स्पर्श आदि बीस प्रकृतियों का चार में और पाँच बन्धन तथा पाँच संघात का पाँच शरीरों में अन्तर्भाव होता है। अत: कुल प्रकृतियाँ भेद विवक्षा से

१४८ और अभेद विवक्षा से मात्र १२२ हैं।

सम्यक्-मिथ्यात्व और सम्यक्प्रकृति – इन दो प्रकृतियों का बन्ध नहीं होता हैं, क्योंकि इन दोनों का आविर्भाव सम्यक्त्व परिणामों से सत्ताभूत मिथ्यात्वप्रकृति के तीन खण्ड करने पर होता है, इस कारण अनादि मिथ्यादृष्टि जीव की बन्ध-योग्य प्रकृतियाँ १२० और सत्त्व-योग्य प्रकृतियाँ १४६ हैं।

मिथ्यात्व गुणस्थान में तीर्थङ्करप्रकृति, आहारक शरीर और आहारक आङ्गोपाङ्ग – इन तीन प्रकृतियों का बन्ध नहीं होता है, क्योंकि इन तीनों प्रकृतियों का बन्ध सम्यग्दृष्टियों को ही होता है। इसलिए इस मिथ्यात्व गुणस्थान में एक सौ बीस में से तीन घटाने पर **११७ प्रकृतियों का बन्ध** हो सकता है।

प्रश्न ४८९ – मिथ्यात्व गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों का उदय हो सकता है?

उत्तर – मिथ्यात्व गुणस्थान में सम्यक्प्रकृति, सम्यक्-मिथ्यात्व, आहारक शरीर, आहारक आङ्गोपाङ्ग और तीर्थङ्करप्रकृति – इन पाँच प्रकृतियों का उदय नहीं होता। इसलिए १२२ में से पाँच घटाने पर **११७ प्रकृतियों का उदय** हो सकता है।

प्रश्न ४९० – मिथ्यात्व गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों का सत्त्व (सत्ता) रह सकता है?[१]

---

१. प्रश्न – बन्ध, सत्त्व और उदय में क्या अन्तर है?

उत्तर – योग और कषाय के निमित्त से जब कार्मणवर्गणा कर्मरूप से परिणत होकर जीव के प्रदेशों में बन्ध को प्राप्त होती है, तब प्रथम समय में वह कर्म 'बन्ध' कहलाता है। पश्चात् वे ही कर्म द्वितीय समय से लेकर जब तक उदय को प्राप्त नहीं होते, तब तक उन कर्मों का 'सत्त्व' कहलाता है तथा तत्पश्चात् जब वे कर्म फल देते हैं, वह उन कर्मों का 'उदय' कहलाता है। **(– कषायपाहुड़, १/§२५०/२९१)**

उत्तर — मिथ्यात्व गुणस्थान में **१४८ प्रकृतियों का सत्त्व** रह सकता है।

प्रश्न ४९१ — सासादन गुणस्थान किसे कहते हैं?

उत्तर — प्रथमोपशम सम्यक्त्व के काल में जब अधिक से अधिक छह आवली और कम से कम एक समय बाकी रहता है, उस समय किसी एक अनन्तानुबन्धी कषाय के उदय से सम्यक्त्व का नाश हो जाता है, उसे **सासादन गुणस्थान** कहते हैं।

प्रश्न ४९२ (अ) — सम्यक्त्व के कितने भेद-प्रभेद हैं, उनका स्वरूप क्या है?

उत्तर — सम्यक्त्व के तीन भेद हैं —

१. दर्शनमोहनीय की तीन और अनन्तानुबन्धी की चार — इन सात प्रकृतियों के उपशम से जो सम्यक्त्व उत्पन्न होता है, उसे **औपशमिक सम्यक्त्व** कहते हैं।

२. इन सात प्रकृतियों के क्षय से जो सम्यक्त्व उत्पन्न होता है, उसे **क्षायिक सम्यक्त्व** कहते हैं।

३. इन्हीं सात में से छह प्रकृतियों के अनुदय और सम्यक्प्रकृति नामक दर्शनमोहनीयकर्म की एक देशघाति प्रकृति के उदय से जो सम्यक्त्व होता है, उसे **क्षायोपशमिक सम्यक्त्व** कहते हैं।

उपशम सम्यक्त्व के दो भेद हैं — प्रथमोपशम सम्यक्त्व और द्वितीयोपशम सम्यक्त्व।

प्रश्न ४९२ (ब) — प्रथमोपशम सम्यक्त्व किसे कहते हैं?

उत्तर — अनादि मिथ्यादृष्टि के पाँच और सादि मिथ्यादृष्टि के

सात प्रकृतियों के उपशम से जो सम्यक्त्व उत्पन्न होता है, उसे **प्रथमोपशम सम्यक्त्व** कहते हैं।

प्रश्न ४९३ — द्वितीयोपशम सम्यक्त्व किसे कहते हैं?

उत्तर — सातवें गुणस्थान में क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि जीव उपशमश्रेणी चढ़ने के सम्मुख अवस्था में अनन्तानुबन्धी कषाय-चतुष्टय का अप्रत्याख्यानादि कषायरूप विसंयोजन करके तथा दर्शनमोहनीय की तीनों प्रकृतियों का उपशम करके जो सम्यक्त्व प्राप्त करता है, उसे **द्वितीयोपशम सम्यक्त्व** कहते हैं।

प्रश्न ४९४ — आवली से क्या तात्पर्य है?

उत्तर — असंख्यात समय की एक **आवली** होती है।

प्रश्न ४९५ — सासादन गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों का बन्ध हो सकता है?

उत्तर — मिथ्यात्व गुणस्थान में जिन ११७ प्रकृतियों का बन्ध हो सकता है, उसमें से मिथ्यात्व गुणस्थान में जिनकी व्युच्छित्ति हो सकती है — ऐसी सोलह व्युच्छिन्न प्रकृतियों के घटाने पर **१०१ प्रकृतियों का बन्ध** सासादन गुणस्थान में हो सकता है। वे सोलह प्रकृतियाँ हैं — मिथ्यात्व, नपुंसकवेद, नरकायु, नरकगति, नरक- गत्यानुपूर्वी, हुण्डक संस्थान, असंप्राप्तासृपाटिका संहनन, एकेन्द्रिय जाति, विकलत्रय की तीन जातियाँ, स्थावर, आतप, सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारण।

प्रश्न ४९६ — व्युच्छित्ति किसे कहते हैं?

उत्तर — व्युच्छित्ति का अर्थ **सम्बन्ध-विच्छेद** है। जिस गुणस्थान में जिन कर्म-प्रकृतियों के बन्ध, उदय अथवा सत्त्व की व्युच्छित्ति कही जाती है, उस गुणस्थान तक ही उन प्रकृतियों का बन्ध, उदय अथवा

सत्त्व पाया जाता है। उसके बाद किसी भी गुणस्थान में उन प्रकृतियों का बन्ध, उदय अथवा सत्त्व नहीं होता है, इसी को **व्युच्छित्ति** कहते हैं।

प्रश्न ४९७ – सासादन गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों का उदय हो सकता है?

उत्तर – मिथ्यात्व गुणस्थान में जिन ११७ प्रकृतियों का उदय कहा है, उनमें से व्युच्छिन्न प्रकृतियाँ – मिथ्यात्व, आतप, सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारण – इन पाँच के घटाने पर ११२ बचती हैं, परन्तु नरकगत्यानुपूर्वी का भी सासादन गुणस्थान में उदय नहीं होता, इसलिए सासादन गुणस्थान में **१११ प्रकृतियों का उदय** हो सकता है।

प्रश्न ४९८ – सासादन गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों का सत्त्व रह सकता है?

उत्तर – सासादन गुणस्थान में **१४५ प्रकृतियों का सत्त्व** रह सकता है, क्योंकि इस गुणस्थान में कुल १४८ प्रकृतियों में से तीर्थङ्करप्रकृति, आहारकशरीर और आहारक-अङ्गोपाङ्ग – इन तीन प्रकृतियों की सत्ता नहीं रहती।

प्रश्न ४९९ – मिश्र गुणस्थान किसे कहते हैं?

उत्तर – सम्यक्-मिथ्यात्वप्रकृति के उदय से जीव में न तो केवल सम्यक्त्वरूप परिणाम होता है और न केवल मिथ्यात्वरूप परिणाम होता है, किन्तु दही-गुड़ के मिले हुए स्वाद की तरह एक भिन्न जाति का मिश्र परिणाम होता है, इसी को **मिश्र गुणस्थान** कहते हैं।

प्रश्न ५०० – मिश्र गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों का बन्ध हो सकता है?

उत्तर – सासादन गुणस्थान में बन्ध योग्य प्रकृतियाँ १०१ होती हैं; इनमें से व्युच्छिन्न प्रकृतियाँ – अनन्तानुबन्धी क्रोध-मान- माया-लोभ, स्त्यानगृद्धि, निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, दुर्भग, दु:स्वर, अनादेय, न्यग्रोध संस्थान, स्वाति संस्थान, कुब्जक संस्थान, वामन संस्थान, वज्रनाराच संहनन, नाराच संहनन, अर्द्धनाराच संहनन, कीलित संहनन, अप्रशस्त-विहायोगति, स्त्रीवेद, नीच गोत्र, तिर्यग्गति, तिर्यग्गत्यानुपूर्वी, तिर्यगायु, उद्योत – इन २५ प्रकृतियों की बन्ध-व्युच्छित्ति हो जाती है; अत: ७६ प्रकृतियाँ शेष रहती है, परन्तु इस गुणस्थान में किसी भी आयुकर्म का बन्ध नहीं होता है। इन ७६ में से मनुष्यायु और देवायु – दो के घटाने पर **७४ प्रकृतियों का बन्ध** हो सकता है क्योंकि नरकायु की पहले गुणस्थान में और तिर्यगायु की दूसरे गुणस्थान में ही व्युच्छित्ति हो जाती है।

प्रश्न ५०१ – मिश्र गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों का उदय हो सकता है?

उत्तर – सासादन गुणस्थान में १११ प्रकृतियों का उदय हो सकता है, उनमें से व्युच्छिन्न प्रकृतियाँ – अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ, एकेन्द्रिय आदि चार जातियाँ और स्थावर – इन ९ प्रकृतियों की उदय-व्युच्छित्ति दूसरे गुणस्थान में हो जाती है; अत: १०२ प्रकृतियाँ शेष रहती हैं। साथ ही चार आनुपूर्वी में से नरक-गत्यानुपूर्वी की व्युच्छित्ति पहले ही हो जाने से बाकी तीन आनुपूर्वी का भी उदय नहीं होता; इस प्रकार शेष ९९ प्रकृतियाँ तथा एक सम्यक्-मिथ्यात्व प्रकृति को मिलाकर कुल **१०० प्रकृतियों का उदय** मिश्र गुणस्थान में हो सकता है।

प्रश्न ५०२ – मिश्र गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों का सत्त्व रह सकता है?

उत्तर – मिश्र गुणस्थान में तीर्थङ्करप्रकृति के बिना **१४७ प्रकृतियों का सत्त्व** रह सकता है।

प्रश्न ५०३ – अविरत-सम्यक्त्व गुणस्थान किसे कहते हैं?

उत्तर — दर्शनमोहनीय की तीन और अनन्तानुबन्धी की चार — इन सात प्रकृतियों के उपशम, क्षय अथवा क्षयोपशम से सम्यक्त्वसहित और अप्रत्याख्यानावरण क्रोध-मान-माया-लोभ के उदय से व्रतरहित परिणाम को **अविरत-सम्यग्दृष्टि गुणस्थान** कहते हैं।

प्रश्न ५०४ — अविरत-सम्यक्त्व गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों का बन्ध हो सकता है?

उत्तर — मिश्र गुणस्थान में ७४ प्रकृतियों का बन्ध हो सकता है, परन्तु अविरत-सम्यक्त्व गुणस्थान में मनुष्यायु, देवायु और तीर्थङ्करप्रकृति — इन तीनसहित **७७ प्रकृतियों का बन्ध** हो सकता है।

प्रश्न ५०५ — अविरत-सम्यक्त्व गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों का उदय हो सकता है?

उत्तर — मिश्र गुणस्थान में १०० प्रकृतियों का उदय हो सकता है, उनमें से व्युच्छिन्न प्रकृति — सम्यक्-मिथ्यात्व के घटाने पर रही ९९ बचती हैं, परन्तु इनमें चार आनुपूर्वी और एक सम्यक्प्रकृति — इन पाँच प्रकृतियों को मिलाने पर **१०४ प्रकृतियों का उदय** अविरत-सम्यक्त्व गुणस्थान में हो सकता है।

प्रश्न ५०६ — अविरत-सम्यक्त्व गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों का सत्त्व रह सकता है?[१]

उत्तर — अविरत-सम्यक्त्व गुणस्थान में सब अर्थात् **१४८ प्रकृतियों का सत्त्व** रह सकता है, किन्तु क्षायिक सम्यग्दृष्टि की अपेक्षा इस गुणस्थान में मात्र **१४१ प्रकृतियों का ही सत्त्व** रह सकता है।

१. यहाँ चौथे से लेकर ग्यारहवें गुणस्थान तक क्षायिक सम्यग्दृष्टियों में 'सत्त्व' की अपेक्षा अन्तर बताया जायेगा, परन्तु बन्ध और उदय की अपेक्षा गुणस्थानों के भावों में क्षायिक सम्यग्दृष्टि और अन्य सम्यग्दृष्टियों में अन्तर नहीं है।

प्रश्न ५०७ — देशविरत गुणस्थान किसे कहते हैं?

उत्तर — जहाँ प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ के उदय से यद्यपि संयमभाव नहीं होता, तथापि अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ के क्षयोपशम से श्रावक-व्रतरूप देशचारित्र होता है, इसी को **देशविरत गुणस्थान** कहते हैं।

पाँचवें आदि ऊपर के समस्त गुणस्थानों में सम्यग्दर्शन और उसका अविनाभावी सम्यग्ज्ञान अवश्य होता है, क्योंकि इनके बिना पाँचवें, छठवें आदि गुणस्थान नहीं होते।

प्रश्न ५०८ — देशविरत गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों का बन्ध होता है?

उत्तर — अविरत-सम्यक्त्व गुणस्थान में ७७ प्रकृतियों का बन्ध हो सकता है, उनमें से व्युच्छिन्न प्रकृतियाँ — अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, मनुष्यायु, औदारिक शरीर, औदारिक अङ्गोपाङ्ग, वज्रऋषभनाराच संहनन — इन दस के घटाने पर शेष **६७ प्रकृतियों का बन्ध** देशविरत गुणस्थान में हो सकता है।

प्रश्न ५०९ — देशविरत गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों का उदय हो सकता है?

उत्तर — चौथे गुणस्थान में १०४ प्रकृतियों का उदय हो सकता है, उनमें से व्युच्छन्न प्रकृतियाँ — प्रत्याख्यावरण क्रोध, मान, माया, लोभ, देवगति, देव-गत्यानुपूर्वी, देवायु, नरकगति, नरक- गत्यानुपूर्वी, नरकायु, वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिक-अङ्गोपाङ्ग, मनुष्य- गत्यानुपूर्वी, तिर्यग्गत्यानुपूर्वी, दुर्भग, अनादेय, अयशस्कीर्ति — इन सतरह के घटाने पर शेष **८७ प्रकृतियों का उदय** देशविरत गुणस्थान में हो सकता है।

प्रश्न ५१० — देशविरत गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों का सत्त्व रह सकता है?

उत्तर — चौथे गुणस्थान में १४८ प्रकृतियों का सत्त्व रह सकता है; उनमें से व्युच्छिन्न प्रकृति — एक नरकायु के बिना **१४७ प्रकृतियों का सत्त्व** रह सकता है, किन्तु क्षायिक सम्यग्दृष्टि की अपेक्षा इस गुणस्थान में **१४० प्रकृतियों का सत्त्व** देशविरत गुणस्थान में रह सकता है।

प्रश्न ५११ — प्रमत्तविरत गुणस्थान किसे कहते हैं?

उत्तर — इस गुणस्थान में संज्वलन कषाय और हास्यादि नोकषाय के तीव्र उदय से संयमभाव के साथ मलजनक प्रमादयुक्त परिणाम होते हैं। यद्यपि संज्वलन और नोकषाय का उदय चारित्रगुण का विरोधी है, तथापि प्रत्याख्यानावरण कषाय के क्षयोपशम से उत्पन्न सकल संयम को घातने में वह समर्थ नहीं है, इस कारण उसे भी उपचार से संयम का उत्पादक कहा है; इसीलिए इस गुणस्थानवर्त्ती मुनि को **प्रमत्तविरत** अर्थात् **चित्रलाचरणी** कहते हैं — यह **प्रमत्तविरत गुणस्थान** है।

प्रश्न ५१२ — प्रमत्तविरत गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों का बन्ध हो सकता है?

उत्तर — देशविरत गुणस्थान में जो ६७ प्रकृतियों का बन्ध हो सकता है, उनमें से प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ — इन चार व्युच्छिन्न प्रकृतियों के घटाने पर शेष **६३ प्रकृतियों का बन्ध** छठवें प्रमत्तविरत गुणस्थान में हो सकता है।

प्रश्न ५१३ — प्रमत्तविरत गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों का उदय हो सकता है?

उत्तर — देशविरत गुणस्थान में ८७ प्रकृतियों का उदय हो सकता है, उनमें से व्युच्छिन्न प्रकृतियाँ — प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ; तिर्यग्गति, तिर्यगायु, उद्योत और नीचगोत्र — इन आठ के घटाने पर शेष ७९ प्रकृतियाँ बचती हैं; उनमें आहारक शरीर और आहारक

अङ्गोपाङ्ग — ये दो प्रकृतियाँ मिलाने से **८१ प्रकृतियों का उदय** प्रमत्तविरत गुणस्थान में हो सकता है।

प्रश्न ५१४ — प्रमत्तविरत गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों का सत्त्व रह सकता है?

उत्तर — देशविरत गुणस्थान में १४७ प्रकृतियों की सत्ता कही है, उनमें से व्युच्छिन्न प्रकृति — एक तिर्यगायु के घटाने पर **१४६ प्रकृतियों का सत्त्व** प्रमत्तविरत गुणस्थान में रह सकता है, किन्तु क्षायिक सम्यग्दृष्टि की अपेक्षा इस गुणस्थान में **१३९ प्रकृतियों का सत्त्व** रह सकता है।

प्रश्न ५१५ — अप्रमत्तविरत गुणस्थान किसे कहते हैं?

उत्तर — अप्रमत्तविरत गुणस्थान में संज्वलन और नोकषाय का मन्द उदय होने से प्रमादरहित संयमभाव होता है, इस कारण इस गुणस्थानवर्ती मुनि का **सातवाँ अर्थात् अप्रमत्तविरत गुणस्थान** होता है।[१]

प्रश्न ५१६ — अप्रमत्तविरत गुणस्थान के कितने भेद हैं?

उत्तर — अप्रमत्तविरत गुणस्थान के दो भेद हैं — स्वस्थान अप्रमत्तविरत और सातिशय अप्रमत्तविरत।

प्रश्न ५१७ — स्वस्थान अप्रमत्तविरत किसे कहते हैं?

उत्तर — जो मुनि हजारों बार छठवें से सातवें में और सातवें से छठवें गुणस्थान में आने-जाने रूप परिणाम करते हैं, उनके सातवें गुणस्थान को **स्वस्थान अप्रमत्तविरत** कहते हैं।

प्रश्न ५१८ — सातिशय अप्रमत्तविरत किसे कहते हैं?

उत्तर — जो मुनि श्रेणी चढ़ने के सन्मुख होते हैं, उनके सातवें

---

१. अप्रमत्तविरत गुणस्थान की बन्धयोग्य, उदययोग्य और सत्त्वयोग्य प्रकृतियों का वर्णन प्रश्न क्रमाङ्क ५३२ से ५३४ में दिया गया है; लेकिन वहाँ स्वस्थान अप्रमत्तविरत और सातिशय अप्रमत्तविरत की अपेक्षा कोई अन्तर नहीं है।

गुणस्थान को **सातिशय अप्रमत्तविरत** कहते हैं।

प्रश्न ५१९ — श्रेणी चढ़ने का पात्र कौन है?

उत्तर — क्षायिक सम्यग्दृष्टि और द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि मुनि ही श्रेणी चढ़ते हैं। प्रथमोपशम सम्यक्त्ववाला तथा क्षायोपशमिक सम्यक्त्ववाला मुनि श्रेणी नहीं चढ़ सकता है। प्रथमोपशम सम्यक्त्ववाला (मुनि) प्रथमोपशम सम्यक्त्व को छोड़कर, क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि होकर, प्रथम ही अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ का विसंयोजन करके, दर्शनमोहनीय की तीन प्रकृतियों का उपशम करके, द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि होकर अथवा तीनों प्रकृतियों का क्षय करके क्षायिक सम्यग्दृष्टि होकर **श्रेणी चढ़ने का पात्र** होता है।

प्रश्न ५२० — श्रेणी किसे कहते हैं?

उत्तर — जहाँ (सातिशय अप्रमत्तसंयत मुनि के द्वारा) चारित्र मोहनीय कर्म की समस्त प्रकृतियों का क्रम से उपशम या क्षय होता है, उसे **श्रेणी** कहते हैं।

प्रश्न ५२१ — श्रेणी के कितने भेद हैं?

उत्तर — श्रेणी के दो भेद हैं — उपशमश्रेणी और क्षपकश्रेणी।

प्रश्न ५२२ — उपशमश्रेणी किसे कहते हैं?

उत्तर — जिस श्रेणी में चारित्र मोहनीय की इक्कीस प्रकृतियों का उपशम होता है, उसे **उपशमश्रेणी** कहते हैं।

प्रश्न ५२३ — क्षपकश्रेणी किसे कहते हैं?

उत्तर — जिस श्रेणी में चारित्र मोहनीय की इक्कीस प्रकृतियों का क्षय होता है, उसे **क्षपकश्रेणी** कहते हैं।

प्रश्न ५२४ — दोनों श्रेणियों में कौन-कौनसे जीव चढ़ते हैं?

उत्तर — क्षायिक सम्यग्दृष्टि (मुनि) तो दोनों श्रेणी चढ़ सकते हैं; परन्तु द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि मुनि उपशमश्रेणी में ही चढ़ सकते हैं, क्षपकश्रेणी नहीं।

प्रश्न ५२५ — उपशमश्रेणी के कौन-कौनसे गुणस्थान हैं?

उत्तर — उपशमश्रेणी के गुणस्थान **चार** हैं — आठवाँ, नववाँ, दशवाँ और ग्यारहवाँ।

प्रश्न ५२६ — क्षपकश्रेणी के कौन-कौन से गुणस्थान हैं?

उत्तर — क्षपकश्रेणी के गुणस्थान **चार** हैं — आठवाँ, नववाँ, दशवाँ और बारहवाँ।

प्रश्न ५२७ — चारित्रमोहनीय की इक्कीस प्रकृतियों के उपशम तथा क्षय करने के लिए आत्मा के कौनसे परिणाम निमित्तकारण हैं?

उत्तर — चारित्रमोहनीय की समस्त प्रकृतियों के उपशम तथा क्षय करने के लिए आत्मा के तीन करण के परिणाम निमित्तकारण हैं — अध:करण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण।[१]

प्रश्न ५२८ — अध:करण किसे कहते हैं?

उत्तर — जिस करण (परिणामसमूह) में उपरितन (ऊपर के) समयवर्ती तथा अधस्तन (नीचे के) समयवर्ती जीवों के परिणाम अर्थात् भिन्न समयवर्ती अनेक जीवों के परिणाम सदृश अथवा विसदृश होते हैं, उसे **अध:करण** कहते हैं। यह अध:करण सातवें गुणस्थान में सातिशय अप्रमत्तविरत के होता है।

---

१. यद्यपि सम्यग्दर्शन होने के पूर्व तथा ऊपर के गुणस्थान में आरोहण करने के पूर्व भी ये करण होते हैं, परन्तु चारित्रमोहनीय के उपशम और क्षय करने की अपेक्षा से उपशमश्रेणी और क्षपकश्रेणी के इन तीनकारणों में अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण — इन दो करणों को पृथक् से गुणस्थान की संज्ञा भी दी गयी है। जबकि सातवें गुणस्थान में सातिशय अप्रमत्तविरत को अध:करण होता है।

प्रश्न ५२९ – अपूर्वकरण गुणस्थान किसे कहते हैं?

उत्तर – जिस करण में उत्तरोत्तर अपूर्व-अपूर्व परिणाम होते जाते हैं अर्थात् भिन्न समयवर्ती अनेक जीवों के परिणाम सदा विसदृश ही होते हैं, परन्तु एक समयवर्ती अनेक जीवों के परिणाम सदृश या विसदृश होते हैं, उसे **अपूर्वकरण** कहते हैं – यही **अपूर्वकरण गुणस्थान** कहलाता है।

प्रश्न ५३० – अनिवृत्तिकरण गुणस्थान किसे कहते हैं?

उत्तर – जिस करण में भिन्न समयवर्ती अनेक जीवों के परिणाम विसदृश ही होते हैं और एक समयवर्ती अनेक जीवों के परिणाम सदृश ही होते हैं, उसे **अनिवृत्तिकरण** कहते हैं – यही **अनिवृत्तिकरण गुणस्थान** कहलाता है।[१]

अध:करण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण – इन तीनों ही करणों के परिणाम उत्तरोत्तर प्रतिसमय अनन्तगुणी विशुद्धतासहित होते हैं।

प्रश्न ५३१ – अध:करण का दृष्टान्त क्या है?

उत्तर – जैसे – देवदत्त नामक राजा के ३०७२ (तीन हजार बहत्तर) आदमी सेवक हैं, जो १६ विभागों में विभाजित हैं – क्रमश: विभाग क्रमाङ्क १ में १६२, २ में १६६, ३ में १७०, ४ में १७४, ५ में १७८, ६ में १८२, ७ में १८६, ८ में १९०, ९ में १९४, १० में १९८, ११ में २०२, १२ में २०६, १३ में २१०, १४ में २१४, १५ में २१८ और १६ में २२२ आदमी काम करते हैं।

पहले विभाग के १६२ आदमियों में पहले आदमी का वेतन १

१. अपूर्वकरण गुणस्थान और अनिवृत्तिकरण गुणस्थान का बन्धयोग्य, उदययोग्य और सत्त्वयोग्य प्रकृतियों का वर्णन क्रमश: प्रश्न क्रमाङ्क ५३५ से ५३७ और ५३८ से ५४० में दिया गया है।

रुपया, दूसरे का २ रुपया, तीसरे का ३ रुपया; इसी प्रकार क्रम से एक-एक बढ़ते हुए १६२ वें आदमी का वेतन १६२ रुपया है।

दूसरे विभाग के १६६ आदमियों में पहले आदमी का वेतन ४० रुपया और दूसरे आदि आदमियों का वेतन क्रम से एक-एक रुपया बढ़ते हुए १६६ वें आदमी का वेतन २०५ रुपया है।

तीसरे विभाग के १७० आदमियों में पहले आदमी का वेतन ८० रुपया और दूसरे आदि आदमियों का वेतन क्रम से एक-एक रुपया बढ़ते हुए १७० वें आदमी का वेतन २४९ रुपया है।

चौथे विभाग में १७४ आदमियों में पहले आदमी का वेतन १२१ रुपया और क्रम से अन्तिम आदमी का वेतन २९४ रुपया होता है।

इसी प्रकार क्रम में पन्द्रहवें विभाग में २१८ आदमियों में से पहले आदमी का वेतन ६३८ रुपया और क्रम से अन्तिम आदमी का वेतन ८८५ रुपया होता है।

तथा अन्तिम सोलहवें विभाग में २२२ आदमियों में पहले का वेतन ६९१ रुपया और २२२ वें आदमी का वेतन ९१२ रुपया है।

– इस सम्पूर्ण दृष्टान्त में पहले विभाग के प्रारम्भिक ४० आदमियों का वेतन ऊपर के विभागों के किसी भी आदमी के वेतन से नहीं मिलता तथा अन्तिम सोलहवें विभाग के आखिरी ४४ आदमियों का वेतन नीचे के विभागों के किसी भी आदमी के वेतन से नहीं मिलता है। शेष आदमियों के वेतन ऊपर-नीचे के विभागों के आदमियों के वेतनों के साथ यथासम्भव सदृश भी हैं।

इसी प्रकार यथार्थ में भी अध:करण के ऊपर के समयवाले जीवों के परिणामों और नीचे के समयवाले जीवों के परिणामों में सदृशता यथासम्भव जानना चाहिए।

इसका विशेष स्वरूप गोम्मटसारजी के गुणस्थानाधिकार में तथा सुशीला उपन्यास के सोलहवें पर्व में देख सकते हैं।

प्रश्न ५३२ – अप्रमत्तविरत गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों का बन्ध हो सकता है?

उत्तर – प्रमत्तविरत गुणस्थान में जिन ६३ प्रकृतियों का बन्ध हो सकता है, उनमें से व्युच्छिन्न प्रकृतियाँ – अस्थिर, अशुभ, असाता, अयशस्कीर्ति, अरति और शोक – इन छह के घटाने पर शेष ५७ में आहारक शरीर और आहारक अङ्गोपाङ्ग – इन दो प्रकृतियों को मिलाकर **५९ प्रकृतियों का बन्ध** अप्रमत्तविरत गुणस्थान में हो सकता है।

प्रश्न ५३३ – अप्रमत्तविरत गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों का उदय हो सकता है?

उत्तर – प्रमत्तविरत गुणस्थान में जिन ८१ प्रकृतियों का उदय हो सकता है, उनमें से व्युच्छिन्न प्रकृत्तियाँ – आहारक शरीर, आहारक अङ्गोपाङ्ग, निद्रा-निद्रा, प्रचला-प्रचला, और स्त्यानगृद्धि – इन पाँच के घटाने पर शेष **७६ प्रकृतियों का उदय** अप्रमत्तविरत गुणस्थान में हो सकता है।

प्रश्न ५३४ – अप्रमत्तविरत गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों का सत्त्व रह सकता है?

उत्तर – प्रमत्त-विरत गुणस्थान की तरह अप्रमत्तविरत गुणस्थान में भी **१४६ प्रकृतियों का सत्त्व** रह सकता है और क्षायिक सम्यग्दृष्टि की अपेक्षा इस गुणस्थान में **१३९ प्रकृतियों का सत्त्व** रह सकता है।

प्रश्न ५३५ – अपूर्वकरण गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों का बन्ध हो सकता है?

उत्तर – अप्रमत्तविरत गुणस्थान में जिन ५९ प्रकृतियों का बन्ध हो सकता है, उनमें से व्युच्छिन्न प्रकृति – एक देवायु के घटाने पर **५८ प्रकृतियों का बन्ध** अपूर्वकरण गुणस्थान में हो सकता है।

प्रश्न ५३६ – अपूर्वकरण गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों का उदय हो सकता है?

उत्तर – अप्रमत्तविरत गुणस्थान में जिन ७६ प्रकृतियों का उदय हो सकता है, उनमें से व्युच्छिन्न प्रकृतियाँ – सम्यक्प्रकृति, अर्धनाराच, कीलक संस्थान और असंप्राप्तासृपाटिका संहनन – इन चार के घटाने पर शेष **७२ प्रकृतियों का उदय** अपूर्वकरण गुणस्थान में हो सकता है।

प्रश्न ५३७ – अपूर्वकरण गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों का सत्त्व रह सकता है?

उत्तर – अप्रमत्तविरत गुणस्थान में जिन १४६ प्रकृतियों का सत्त्व हो सकता है, उनमें से व्युच्छिन्न प्रकृतियाँ – अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ – इन चार को घटाकर द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि उपशम-श्रेणीवालों की अपेक्षा **१४२ प्रकृतियों का सत्त्व** अपूर्वकरण गुणस्थान में रह सकता है, किन्तु क्षायिक सम्यग्दृष्टि उपशमश्रेणीवालों की अपेक्षा इस गुणस्थान में दर्शनमोहनीय की तीन प्रकृतिरहित **१३९ प्रकृतियों का सत्त्व** रह सकता है। क्षपकश्रेणीवालों की अपेक्षा सातवें गुणस्थान की व्युच्छिन्न प्रकृतियाँ – अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ तथा दर्शनमोहनीय की तीन और एक देवायु – इन आठ को घटाने पर इस गुणस्थान में शेष **१३८ प्रकृतियों का सत्त्व** रह सकता है।

प्रश्न ५३८ – अनिवृत्तिकरण गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों का बन्ध हो सकता है?

उत्तर – अपूर्वकरण गुणस्थान में जिन ५८ प्रकृतियों का बन्ध हो सकता है, उनमें से व्युच्छिन्न प्रकृतियाँ – निद्रा, प्रचला, तीर्थङ्कर,

निर्माण, प्रशस्त-विहायोगति, पञ्चेन्द्रिय जाति, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, आहारक शरीर, आहारक अङ्गोपाङ्ग, समचतुरस्र संस्थान, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक अङ्गोपाङ्ग, देवगति, देव गत्यानुपूर्वी, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, अगुरुलघुत्व, उपघात, परघात, उच्छ्‌वास, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, हास्य, रति, जुगुप्सा और भय – इन छत्तीस को घटाने पर शेष **२२ प्रकृतियों का बन्ध** अनिवृत्तिकरण गुणस्थान में हो सकता है।

प्रश्न ५३९ – अनिवृत्तिकरण गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों का उदय हो सकता है?

उत्तर – अपूर्वकरण गुणस्थान में जिन ७२ प्रकृतियों का उदय हो सकता है, उनमें से व्युच्छिन्न प्रकृतियाँ – हास्य, रति, अरति, शोक, भय और जुगुप्सा – इन छह को घटाने पर शेष **६६ प्रकृतियों का उदय** अनिवृत्तिकरण गुणस्थान में हो सकता है।

प्रश्न ५४० – अनिवृत्तिकरण गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों का सत्त्व हो सकता है?

उत्तर – अपूर्वकरण गुणस्थान के समान इस अनिवृत्तिकरण गुणस्थान में भी द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि उपशमश्रेणीवालों की अपेक्षा १४२ और क्षायिक सम्यग्दृष्टि उपशमश्रेणीवालों की अपेक्षा इस गुणस्थान में **१३९ प्रकृतियों का सत्त्व** तथा क्षायिक सम्यग्दृष्टि क्षपकश्रेणीवालों की अपेक्षा इस गुणस्थान में **१३८ प्रकृतियों का सत्त्व** रह सकता है।

प्रश्न ५४१ – सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान किसे कहते हैं?

उत्तर – तीन करण के बाद अत्यन्त सूक्ष्म अवस्था को प्राप्त लोभ कषाय के उदय का अनुभव करते हुए जीव को **सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान** होता है।

प्रश्न ५४२ – सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों का बन्ध हो सकता है?

उत्तर – अनिवृत्तिकरण गुणस्थान में जिन २२ प्रकृतियों का बन्ध हो सकता है, उनमें से व्युच्छिन्न प्रकृतियाँ – पुरुषवेद, संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ – इन पाँच को घटाकर शेष **१७ प्रकृतियों का बन्ध** सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान में हो सकता है।

प्रश्न ५४३ – सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों का उदय हो सकता है?

उत्तर – अनिवृत्तिकरण गुणस्थान में जिन ६६ प्रकृतियों का उदय हो सकता है, उनमें से व्युच्छिन्न प्रकृतियाँ – स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद, संज्वलन क्रोध, मान, माया – इन छह को घटा देने पर शेष **६० प्रकृतियों का उदय** सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान में हो सकता है।

प्रश्न ५४४ – सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों का सत्त्व रहता है?

उत्तर – अनिवृत्तिकरण गुणस्थान की तरह द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि उपशमश्रेणीवालों की अपेक्षा **१४२ प्रकृतियों का सत्त्व** और क्षायिक सम्यग्दृष्टि के **१३९ प्रकृतियों का सत्त्व** सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान में भी रह सकता है, परन्तु क्षायिक सम्यग्दृष्टि क्षपकश्रेणीवालों की अपेक्षा नववें गुणस्थान में १३८ प्रकृतियों का सत्त्व रह सकता है, उनमें से व्युच्छिन्न प्रकृतियाँ – नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, तिर्यग्गति, तिर्यग्गत्यानुपूर्वी, विकलत्रय की तीन, निद्रा-निद्रा, प्रचला-प्रचला, स्त्यानगृद्धि, उद्योत, आतप, एकेन्द्रिय, साधारण, सूक्ष्म, स्थावर, अप्रत्याख्यानावरण की चार, प्रत्याख्यानावरण की चार, नोकषाय की नौ, संज्वलन क्रोध-मान-माया तीन – इन छत्तीस को घटा देने पर शेष **१०२ प्रकृतियों का सत्त्व** इस गुणस्थान में रह सकता है।

प्रश्न ५४५ — उपशान्तमोह गुणस्थान किसे कहते हैं?

उत्तर — चारित्रमोहनीय की २१ प्रकृतियों का उपशम होने से यथाख्यातचारित्र को धारण करनेवाले मुनिराज को **उपशान्तमोह गुणस्थान** होता है।

इस गुणस्थान का काल समाप्त होने पर मोहनीय के उदय से जीव नीचे के गुणस्थानों में क्रम से आ जाता है। वह छठवें से लेकर पहले गुणस्थान तक यथासम्भव आ सकता है।

प्रश्न ५४६ — उपशान्तमोह गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों का बन्ध होता है?[१]

उत्तर — सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान में जिन १७ प्रकृतियों का बन्ध होता था, उनमें से व्युच्छिन्न प्रकृतियाँ — ज्ञानावरण की पाँच, दर्शनावरण की चार, अन्तराय की पाँच, यशःकीर्ति और उच्चगोत्र — इन सोलह को घटा देने पर शेष **एकमात्र सातावेदनीय प्रकृति का बन्ध** होता है।

प्रश्न ५४७ — उपशान्तमोह गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों का उदय हो सकता है?[१]

उत्तर — सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान में जिन ६० प्रकृतियों का उदय हो सकता है, उनमें से (उपशमश्रेणी की अपेक्षा) एक व्युच्छिन्न प्रकृति — संज्वलन लोभ को घटा देने पर शेष **५९ प्रकृतियों का उदय** उपशान्तमोह गुणस्थान में हो सकता है।

प्रश्न ५४८ — उपशान्तमोह गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों का सत्त्व हो सकता है?

१. उपशान्तमोह गुणस्थान में क्षपकश्रेणीवाला जीव नहीं जाता।

उत्तर — आठवें, नववें और दशवें गुणस्थान की तरह द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि के **१४२ प्रकृतियों का सत्त्व** और क्षायिक सम्यग्दृष्टि के **१३९ प्रकृतियों का सत्त्व** इस उपशान्तमोह गुणस्थान में रह सकता है।

प्रश्न ५४९ — क्षीणमोह गुणस्थान किसे कहते हैं? और वह किसे होता है?

उत्तर — मोहनीयकर्म के अत्यन्त क्षय होने से स्फटिक के बर्तन में रखे हुए जल के समान अत्यन्त निर्मल, अविनाशी, यथाख्यातचारित्ररूप परिणामों के धारक मुनिराज को **बारहवाँ क्षीणमोह गुणस्थान** होता है।

प्रश्न ५५० — क्षीणमोह गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों का बन्ध होता है?

उत्तर — उपशान्तमोह गुणस्थान के समान क्षीणमोह गुणस्थान में भी **एकमात्र सातावेदनीय प्रकृति का बन्ध** होता है।

प्रश्न ५५१ — क्षीणमोह गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों का उदय होता है?

उत्तर — उपशान्तमोह गुणस्थान में जिन ५९ प्रकृतियों का उदय होता है, उनमें से व्युच्छिन्न प्रकृतियाँ — वज्रनाराच और नाराच — इन दो को घटा देने पर शेष **५७ प्रकृतियों का उदय** क्षीणमोह गुणस्थान में हो सकता है।[१]

१. यद्यपि क्षपकश्रेणीवाला जीव सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान से सीधे क्षीणमोह गुणस्थान में आता है, तथापि यहाँ मात्र उपशान्तमोह गुणस्थान के साथ मात्र तुलनात्मक विश्लेषण किया गया है। हम ऐसा भी कह सकते हैं कि **“सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान में जिन ६० प्रकृतियों का उदय होता है, उनमें से (क्षपकश्रेणी की अपेक्षा) व्युच्छिन्न प्रकृतियाँ — संज्वलन लोभ, वज्रनाराच और नारच — इन तीन को घटा देने पर शेष ५७ प्रकृतियों का उदय क्षीणमोह गुणस्थान में हो सकता है।”**

प्रश्न ५५२ – क्षीणमोह गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों का सत्त्व रहता है?

उत्तर – सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान में क्षपकश्रेणीवालों की अपेक्षा १०२ प्रकृतियों का सत्त्व रह सकता है, उनमें से व्युच्छिन्न प्रकृति – संज्वलन लोभ को घटा देने पर शेष **१०१ प्रकृतियों का सत्त्व** रह सकता है।

प्रश्न ५५३ – सयोगकेवली गुणस्थान किसे कहते हैं? और वह किसे होता है?

उत्तर – जब घातिया कर्मों की सैंतालीस प्रकृतियाँ – ज्ञानावरण की पाँच, दर्शनावरण की नौ, मोहनीय की अट्ठाईस और अन्तराय की पाँच तथा अघातिया कर्मों की सोलह प्रकृतियाँ – नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, तिर्यग्गति, तिर्यग्गत्यानुपूर्वी, विकलत्रय की तीन, आयु की तीन, उद्योत, आतप, एकेन्द्रिय, साधारण, सूक्ष्म और स्थावर – इन त्रेसठ प्रकृतियों का क्षय हो जाने से लोकालोक-प्रकाशक केवलज्ञान प्रगट हो जाता है। वे अपनी दिव्यध्वनि से भव्य जीवों को मोक्षमार्ग का उपदेश देकर संसार में मोक्षमार्ग का प्रकाश करते हैं; तब मनोयोग, वचनयोग और काययोग के धारक परम भट्टारक अरहन्त भगवान को **सयोगकेवली** नामक तेरहवाँ गुणस्थान होता है।

प्रश्न ५५४ – सयोगकेवली गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों का बन्ध होता है?

उत्तर – उपशान्तमोह गुणस्थान और क्षीणमोह गुणस्थान के समान सयोगकेवली गुणस्थान में भी **एकमात्र सातावेदनीय प्रकृति का बन्ध** होता है।

प्रश्न ५५५ – सयोगकेवली गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों का उदय होता है?

उत्तर – क्षीणमोह गुणस्थान में जिन ५७ प्रकृतियों का उदय हो सकता है, उनमें से व्युच्छिन्न प्रकृतियाँ – ज्ञानावरण की पाँच, अन्तराय की पाँच, दर्शनावरण की चार, निद्रा और प्रचला – इन सोलह को घटा देने पर शेष ४१ प्रकृतियाँ और तीर्थङ्करप्रकृति को मिलाकर कुल **४२ प्रकृतियों का उदय** सयोगकेवली गुणस्थान में हो सकता है।

प्रश्न ५५६ – सयोगकेवली गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों का सत्त्व होता है?

उत्तर – क्षीणमोह गुणस्थान में जिन १०१ प्रकृतियों का सत्त्व हो सकता है, उनमें से व्युच्छिन्न प्रकृतियाँ – ज्ञानावरण की पाँच, अन्तराय की पाँच, दर्शनावरण की चार, निद्रा और प्रचला – इन सोलह को घटा देने पर सयोगकेवली गुणस्थान में शेष **८५ प्रकृतियों का सत्त्व** रह सकता है।

प्रश्न ५५७ – अयोगकेवली गुणस्थान किसे कहते हैं? और वह किसे होता है?

उत्तर – मन-वचन-काय नामक योगों से रहित और केवलज्ञान-सहित परमभट्टारक अरहन्त भगवान के परिणाम को **अयोगकेवली गुणस्थान** कहते हैं।

इस गुणस्थान का काल अ इ उ ऋ लृ – इन पाँच ह्रस्व स्वरों के उच्चारण करने के बराबर है। इस गुणस्थान के द्विचरम समय में सत्ताभूत ८५ प्रकृतियों में से ७२ प्रकृतियों का और चरम समय में १३ प्रकृतियों का नाश करके अरहन्त भगवान मोक्षधाम (सिद्धशिला) में जाकर सादि-अनन्त काल तक विराजमान रहते हैं।

प्रश्न ५५८ – अयोगकेवली गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों का बन्ध होता है?

उत्तर — सयोगकेवली गुणस्थान में जो एकमात्र सातावेदनीय का बन्ध होता था, उसकी उसी गुणस्थान में व्युच्छित्ति होने से इस चौदहवें अयोग-केवली गुणस्थान में **किसी भी प्रकृति का बन्ध नहीं** होता।

प्रश्न ५५९ — अयोगकेवली गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों का उदय होता है?

उत्तर — सयोगकेवली गुणस्थान में जिन ४२ प्रकृतियों का उदय होता है, उनमें से व्युच्छिन्न प्रकृतियाँ — कोई एक वेदनीय, वज्रऋषभनाराच संहनन, निर्माण, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुस्वर, दुःस्वर, प्रशस्त-विहायोगति, अप्रशस्त-विहायोगति, औदारिक शरीर, औदारिक अङ्गोपाङ्ग, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, समचतुरस्र संस्थान, न्यग्रोध संस्थान, स्वाति संस्थान, कुब्जक संस्थान, वामन संस्थान, हुण्डक संस्थान, स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, अगुरुलघुत्व, उपघात, परघात, उच्छ्वास, और प्रत्येक — इन ३० प्रकृतियों को घटाने पर शेष **१२ प्रकृतियों का उदय** इस अन्तिम गुणस्थान में होता है। वे १२ प्रकृतियाँ हैं — वेदनीय की शेष एक, मनुष्यगति, मनुष्यायु, पञ्चेन्द्रियजाति, सुभग, त्रस, बादर, पर्याप्त, आदेय, यशःकीर्ति, तीर्थङ्करप्रकृति और उच्चगोत्र।

प्रश्न ५६० — अयोगकेवली गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों का सत्त्व रहता है?

उत्तर — सयोगकेवली गुणस्थान की तरह इस गुणस्थान में भी **८५ प्रकृतियों का सत्त्व** रह सकता है, परन्तु द्विचरम-समय में इनमें से ७२ प्रकृतियाँ — शरीर की पाँच, बन्धन की पाँच, संघात की पाँच, संस्थान की छह, संहनन की छह, अङ्गोपाङ्ग की तीन, वर्ण की पाँच, गन्ध की दो, रस की पाँच, स्पर्श की आठ, स्थिर, अस्थिर, शुभ,

अशुभ, सुस्वर, दुःस्वर, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, प्रशस्त विहायोगति, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, निर्माण, अयश, अनादेय, प्रत्येक, पर्याप्त, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, अनुदयरूप कोई एक वेदनीय, नीच गोत्र — इनका सत्त्व नष्ट होता है तथा अन्तिम समय में शेष १३ प्रकृतियाँ — एक शेष वेदनीय, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, मनुष्यायु, पञ्चेन्द्रिय, सुभग, त्रस, बादर, पर्याप्त, आदेय, यश, तीर्थङ्कर, उच्चगोत्र — इनका सत्त्व नष्ट करके **अरहन्त भगवान् मोक्ष को पधारते हैं।**[1]

।। इति चतुर्थोऽध्यायः समाप्तः।।

---

१. जिसप्रकार बन्धनयुक्त प्राणी बेड़ी आदि के छूट जाने पर स्वतन्त्र होकर यथेच्छ गमन करता हुआ सुखी होता है, उसी प्रकार कर्म-बन्धन का वियोग (मोक्ष) हो जाने पर आत्मा स्वाधीन होकर आत्यन्तिक ज्ञान-दर्शन व अनुपम सुख का अनुभव करता है। **(— तत्त्वार्थवार्तिक, १/४)**

जब आत्मा कर्ममल (अष्टकर्म), कलङ्क (राग-द्वेष-मोहरूपी भावकर्म) और शरीर (नोकर्म) को अपने से सर्वथा जुदा कर देता है, तब उसके जो अचिन्त्य स्वाभाविक ज्ञानादि गुणरूप और अव्याबाध सुखरूप सर्वथा विलक्षण अवस्था उत्पन्न होती है, उसे **मोक्ष** कहते हैं। **(— सर्वार्थसिद्धि, १/१ उत्थानिका)**

कर्मों के निर्मूल करने में समर्थ, ऐसा शुद्धात्मा की उपलब्धिरूप जीव का परिणाम, **भावमोक्ष** है और उस भावमोक्ष के निमित्त से जीव व कर्मों के प्रदेशों का निरवशेषरूप से पृथक् हो जाना, **द्रव्यमोक्ष** है। **(— पञ्चास्तिकायसंग्रह, तात्पर्यवृत्ति, १०८)**

मनुष्यगति से जीव का मोक्ष होना सम्भव है। आयु के अन्त में मुक्तजीव का शरीर कपूरवत् उड़ जाता है और वे स्वाभाविक उर्ध्वगति के कारण लोक-शिखर पर जा विराजते हैं, जहाँ वे अनन्तकाल तक अनन्त अतीन्द्रिय सुख का उपभोग करते हुए अपने चरम शरीर के आकाररूप में स्थित रहते हैं और पुनः शरीर धारण करके जन्म-मरण के चक्कर में कभी नहीं पड़ते हैं। ज्ञान ही उनका शरीर होता है।

(— जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश, भाग ३, पृष्ठ ३२१)

अध्यात्मदृष्टि से नयों के भेद-प्रभेद

आचार्यों ने अध्यात्मदृष्टि से नयों का कथन किया है। **नय** के मूलभेद दो हैं – निश्चयनय और व्यवहारनय। अभेदरूप को विषय करनेवाला **निश्चयनय** है और भेदरूप को विषय करनेवाला **व्यवहारनय** है। निश्चयनय के दो भेद हैं – **शुद्धनिश्चयनय** और **अशुद्ध-निश्चयनय।** जो निरुपाधिक गुण-गुणी को अभेदरूप ग्रहण करता है, उसे **शुद्धनिश्चयनय** कहते हैं। जैसे, जीव केवलज्ञानस्वरूप है। जो सोपाधिक गुण-गुणी को अभेदरूप ग्रहण करता है, उसे **अशुद्ध-निश्चयनय** कहते हैं। जैसे, जीव मतिज्ञानस्वरूप है।

व्यवहारनय के भी दो भेद हैं – **सद्भूतव्यवहारनय** और **असद्भूतव्यवहारनय।** जो एक पदार्थ में गुण-गुणी को भेदरूप ग्रहण करता है, उसे **सद्भूतव्यवहारनय** कहते हैं। उसके भी दो भेद हैं – **उपचरित** और **अनुपचरित।** जो सोपाधिक गुण-गुणी को भेदरूप ग्रहण करता है, उसे **उपचरितसद्भूतव्यवहारनय** कहते हैं। जैसे, जीव के मतिज्ञानादि गुण हैं। जो निरुपाधिक गुण-गुणी को भेदरूप ग्रहण करता है, उसे **अनुपचरितसद्भुतव्यवहारनय** कहते हैं। जैसे, जीव के केवलज्ञानादिक गुण हैं।

जो भिन्न पदार्थों को अभेदरूप ग्रहण करता है, उसे असद्भूत-व्यवहारनय कहते हैं। उसके भी दो भेद हैं – उपचरित और अनुपचरित। जो संश्लेषरहित वस्तु को अभेदरूप ग्रहण करता है, उसे **उपचरित-असद्भूत-व्यवहारनय** कहते हैं। जैसे, आभरणादिक मेरे हैं। जो संश्लेषसहित वस्तु को अभेदरूप ग्रहण करता है, उसे **अनुपचरित-असद्भूतव्यवहारनय** कहते हैं। जैसे, शरीर मेरा है।

– गुरुवर्य गोपालदास वरैया

'जैन सिद्धान्त' (लेख), स्मृति ग्रन्थ, पृष्ठ २५९

पञ्चम अध्याय

अधिगम के उपाय

(दोहा)

प्रमाण-नय-निक्षेप अरु लक्षण से सुज्ञान।
अधिगम हेतु इन्हें कहा, अन्य नहीं है जान।।

प्रश्न ५६१ – पदार्थों को जानने के कितने उपाय हैं?

उत्तर – पदार्थों को जानने के चार उपाय हैं – लक्षण, प्रमाण, नय, और निक्षेप।

५.१ लक्षण और लक्षणाभास

प्रश्न ५६२ – लक्षण किसे कहते हैं?[१]

उत्तर – बहुत से मिले हुए पदार्थों में से किसी एक पदार्थ को पृथक् करनेवाले हेतु को **लक्षण** कहते हैं। जैसे – जीव का लक्षण चेतना।

प्रश्न ५६३ – लक्षण के कितने भेद हैं?

उत्तर – लक्षण के **दो** भेद हैं – आत्मभूत लक्षण, और अनात्मभूत लक्षण।

प्रश्न ५६४ – आत्मभूत लक्षण किसे कहते हैं?

उत्तर – जो वस्तु के स्वरूप में मिला रहता है, उसे **आत्मभूत लक्षण** कहते हैं। जैसे – अग्नि का लक्षण उष्णपना।

प्रश्न ५६५ – अनात्मभूत लक्षण किसे कहते हैं?

उत्तर – जो वस्तु के स्वरूप में नहीं मिला रहता, उसे **अनात्मभूत लक्षण** कहते हैं। जैसे – दण्डी पुरुष का लक्षण दण्ड।

---

१. जिसके द्वारा यथार्थ पदार्थ का लक्ष्य किया जाता है, उसे लक्षण कहते हैं।
(– न्यायविनिश्चय टीका, १/३/८५)

प्रश्न ५६६ — लक्षणाभास किसे कहते हैं?

उत्तर — सदोष लक्षण को **लक्षणाभास** कहते हैं।

प्रश्न ५६७ — लक्षणाभास के भेद अथवा लक्षण के दोष कितने हैं?

उत्तर — लक्षणाभास के भेद अथवा लक्षण के दोष **तीन** हैं — अव्याप्ति, अतिव्याप्ति और असंभव।

प्रश्न ५६८ — अव्याप्ति दोष किसे कहते हैं?

उत्तर — लक्ष्य के एकदेश में लक्षण के रहने को **अव्याप्ति दोष** कहते हैं। जैसे — पशु का लक्षण सींग।

प्रश्न ५६९ — अतिव्याप्ति दोष किसे कहते हैं?

उत्तर — लक्ष्य और अलक्ष्य दोनों में लक्षण के रहने को **अतिव्याप्ति दोष** कहते हैं। जैसे — गाय का लक्षण सींग।

प्रश्न ५७० — असंभव दोष किसे कहते हैं?

उत्तर — लक्ष्य में लक्षण की असंभवता को **असंभव दोष** कहते हैं। जैसे — जीव का लक्षण अचेतनपना।

प्रश्न ५७१ — लक्ष्य किसे कहते हैं?

उत्तर — जिसका लक्षण किया जाता है, उसे **लक्ष्य** कहते हैं।

प्रश्न ५७२ — अलक्ष्य किसे कहते हैं?

उत्तर — लक्ष्य के अतिरिक्त अन्य पदार्थों को **अलक्ष्य** कहते हैं।

५.२ प्रमाण और उसके भेद-प्रभेद

प्रश्न ५७३ — प्रमाण किसे कहते हैं?[१]

१. स्व और अपूर्व अर्थ के व्यवसायात्मक (निश्चयात्मक) ज्ञान को **प्रमाण** कहते हैं। **(— परीक्षामुखसूत्र १/१)**

उत्तर — सच्चे ज्ञान (सम्यग्ज्ञान) को **प्रमाण** कहते हैं।

प्रश्न ५७४ — प्रमाण के कितने भेद हैं?

उत्तर — प्रमाण के **दो** भेद हैं — प्रत्यक्षप्रमाण और परोक्षप्रमाण।

प्रश्न ५७५ — प्रत्यक्षप्रमाण किसे कहते हैं?

उत्तर — जो ज्ञान, पदार्थ को स्पष्ट (विशद) जानता है, उसे **प्रत्यक्षप्रमाण** कहते हैं।

प्रश्न ५७६ — प्रत्यक्षप्रमाण के कितने भेद हैं?

उत्तर — प्रत्यक्षप्रमाण के दो भेद हैं — सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष और पारमार्थिक प्रत्यक्ष।

प्रश्न ५७७ — सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष किसे कहते हैं?

उत्तर — जो ज्ञान, इन्द्रिय और मन की सहायता से पदार्थ को एकदेश स्पष्ट जानता है, उसे **सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष** कहते हैं।[१]

प्रश्न ५७८ — पारमार्थिक प्रत्यक्ष किसे कहते हैं?

उत्तर — जो ज्ञान, बिना किसी की सहायता के पदार्थ को स्पष्ट जानता है, उसे **पारमार्थिक प्रत्यक्ष** कहते हैं।

प्रश्न ५७९ — पारमार्थिक प्रत्यक्ष के कितने भेद हैं?

उत्तर — पारमार्थिक प्रत्यक्ष के **दो** भेद हैं — विकल पारमार्थिक प्रत्यक्ष और सकल पारमार्थिक प्रत्यक्ष।

१. यहाँ परीक्षामुख आदि न्यायग्रन्थों की पद्धति से वर्णन किया गया है; अत: इन्द्रिय और मन की सहायता से होनेवाले मतिज्ञान को भी एकदेश सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष कहते हैं और प्रत्यक्षादि पर आधारित स्मृति आदि ज्ञानों को परोक्ष कहते हैं। लेकिन तत्त्वार्थसूत्र आदि सिद्धान्तग्रन्थों में स्पष्टत: इन्द्रिय-मन की सहायता से होनेवाले मति-श्रुतज्ञान को परोक्ष कहा है। इसी प्रकार अध्यात्मग्रन्थों में भी आत्मा को लक्ष्य बनाकर उत्पन्न हुए मति-श्रुतज्ञान को अनुभव-प्रत्यक्ष की अपेक्षा प्रत्यक्ष तथा पर को लक्ष्य बनाकर उत्पन्न हुए मति-श्रुतज्ञान को परोक्ष कहा जाता है।

प्रश्न ५८० — विकल पारमार्थिक प्रत्यक्ष किसे कहते हैं?

उत्तर — जो ज्ञान, रूपी पदार्थों को बिना किसी की सहायता के स्पष्ट जानता है; उसे **विकल पारमार्थिक प्रत्यक्ष** कहते हैं।

प्रश्न ५८१ — विकल पारमार्थिक प्रत्यक्ष के कितने भेद हैं?

उत्तर — विकल पारमार्थिक प्रत्यक्ष के **दो** भेद हैं — अवधिज्ञान और मन:पर्ययज्ञान।

प्रश्न ५८२ — अवधिज्ञान किसे कहते हैं?

उत्तर — जो ज्ञान, द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव की मर्यादासहित रूपी पदार्थ को स्पष्ट जानता है, उसे **अवधिज्ञान** कहते हैं।

प्रश्न ५८३ — मन:पर्ययज्ञान किसे कहते हैं?

उत्तर — जो ज्ञान, द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव की मर्यादासहित दूसरे के मन में स्थित रूपी पदार्थ को स्पष्ट जानता है, उसे **मन:पर्ययज्ञान** कहते हैं।

प्रश्न ५८४ — सकल पारमार्थिक प्रत्यक्ष किसे कहते हैं?

उत्तर — सकल पारमार्थिक प्रत्यक्ष, **केवलज्ञान** को कहते हैं।

प्रश्न ५८५ — केवलज्ञान किसे कहते हैं?

उत्तर — जो ज्ञान त्रिकालवर्ती और त्रिलोकवर्ती समस्त पदार्थों को युगपत् (एक साथ) स्पष्ट जानता है, उसे **केवलज्ञान** कहते हैं।

प्रश्न ५८६ — परोक्षप्रमाण किसे कहते हैं?

उत्तर — जो ज्ञान दूसरे की सहायता से पदार्थों को सत्य जानता है, उसे **परोक्षप्रमाण** कहते हैं।

प्रश्न ५८७ — परोक्षप्रमाण के कितने भेद हैं?

उत्तर — परोक्षप्रमाण के **पाँच** भेद हैं — स्मृति, प्रत्यभिज्ञान, तर्क, अनुमान और आगम।

प्रश्न ५८८ — स्मृति किसे कहते हैं?

उत्तर — पहले जाने हुए या देखे हुए पदार्थ को याद करना **स्मृति** है।

प्रश्न ५८९ — प्रत्यभिज्ञान किसे कहते हैं?

उत्तर — प्रत्यक्ष और स्मृति के विषयभूत पदार्थों में जोड़रूप ज्ञान को **प्रत्यभिज्ञान** कहते हैं। जैसे — यह वही मनुष्य है, जिसे कल देखा था।

प्रश्न ५९० — प्रत्यभिज्ञान के कितने भेद हैं?

उत्तर — प्रत्यभिज्ञान के अनेक भेद हैं — एकत्व प्रत्यभिज्ञान, सादृश्य प्रत्यभिज्ञान आदि।

प्रश्न ५९१ — एकत्व प्रत्यभिज्ञान किसे कहते हैं?

उत्तर — प्रत्यक्ष और स्मृति के विषयभूत पदार्थ की एकता के सूचक जोड़रूप ज्ञान को **एकत्व प्रत्यभिज्ञान** कहते हैं। जैसे — यह वही मनुष्य है, जिसे कल देखा था।

प्रश्न ५९२ — सादृश्य प्रत्यभिज्ञान किसे कहते हैं?

उत्तर — प्रत्यक्ष और स्मृति के विषयभूत पदार्थों की समानता के सूचक जोड़रूप ज्ञान को **सादृश्य प्रत्यभिज्ञान** कहते हैं। जैसे — यह गाय, गवय (नील गाय) के सदृश है।

प्रश्न ५९३ — तर्क किसे कहते हैं?

उत्तर — व्याप्ति के ज्ञान को **तर्क** कहते हैं।

प्रश्न ५९४ — व्याप्ति किसे कहते हैं?

उत्तर — अविनाभाव सम्बन्ध को **व्याप्ति** कहते हैं।

प्रश्न ५९५ — अविनाभाव सम्बन्ध किसे कहते हैं?

उत्तर — जहाँ-जहाँ साधन (हेतु) होता है, वहाँ-वहाँ साध्य होता है और जहाँ-जहाँ साध्य नहीं होता है, वहाँ-वहाँ साधन भी नहीं होता है, यही **अविनाभाव सम्बन्ध** है। जैसे — जहाँ-जहाँ धूम है, वहाँ-वहाँ अग्नि है और जहाँ-जहाँ अग्नि नहीं है, वहाँ-वहाँ धूम भी नहीं है।[१]

प्रश्न ५९६ — साधन या हेतु किसे कहते हैं?

उत्तर — जो साध्य के बिना नहीं होता है, उसे **साधन या हेतु** कहते हैं। जैसे — अग्नि को जानने का साधन, धूम है।

प्रश्न ५९७ — साध्य किसे कहते हैं?

उत्तर — इष्ट, अबाधित और असिद्ध को **साध्य** कहते हैं।

प्रश्न ५९८ — इष्ट किसे कहते हैं?

उत्तर — जिसे वादी और प्रतिवादी सिद्ध करना चाहते हैं, उसे **इष्ट** कहते हैं।

प्रश्न ५९९ — अबाधित किसे कहते हैं?

उत्तर — जो प्रत्यक्षादि प्रमाणों से बाधित नहीं होता है, उसे **अबाधित** कहते हैं। जैसे — अग्नि का ठण्डापना प्रत्यक्ष प्रमाण से बाधित है; अत: अग्नि का ठण्डापना साध्य नहीं हो सकता।

प्रश्न ६०० — असिद्ध किसे कहते हैं?

उत्तर — जो प्रत्यक्षादि प्रमाण से सिद्ध नहीं हो, उसे **असिद्ध**

---

१. प्रश्न — अविनाभाव के कितने भेद हैं?

उत्तर — अविनाभाव के **दो** भेद हैं — सहभावनियम और क्रमभावनियम। सहचारी और व्याप्य-व्यापकरूप पदार्थों में **सहभावनियम** होता है। जैसे — रूप और रस, रूप और पुद्गल अथवा नीम और वृक्ष। तथा पूर्वोत्तरचारी और कारण-कार्यरूप पदार्थों में **क्रमभावनियम** होता है। जैसे — रविवार और सोमवार अथवा मोक्षमार्ग और मोक्ष।

(— परीक्षामुख, ३/१६—१८)

कहते हैं अथवा जिसका पहले से निश्चय नहीं है, उसे **असिद्ध** कहते हैं।

प्रश्न ६०१ — अनुमान किसे कहते हैं?

उत्तर — साधन से साध्य के ज्ञान को **अनुमान** कहते हैं।[१]

प्रश्न ६०२ — हेत्वाभास (साधनाभास) किसे कहते हैं?

उत्तर — सदोष हेतु को **हेत्वाभास (साधनाभास)** कहते हैं।

प्रश्न ६०३ — हेत्वाभास (साधनाभास) के कितने भेद हैं?

उत्तर — हेत्वाभास (साधनाभास) के **चार** भेद हैं — असिद्ध, विरुद्ध, अनैकान्तिक (व्यभिचारी) और अकिञ्चित्कर।

प्रश्न ६०४ — असिद्ध हेत्वाभास किसे कहते हैं?

उत्तर — जिस हेतु के अभाव का निश्चय हो, अथवा जिसके सद्भाव में सन्देह (शक) हो, उसे **असिद्ध हेत्वाभास** कहते हैं। जैसे — 'शब्द नित्य है, क्योंकि नेत्र का विषय है।' यहाँ शब्द, कर्ण का विषय होने से नेत्र का विषय नहीं हो सकता; अत: 'नेत्र का विषय' हेतु असिद्ध हेत्वाभास है।

प्रश्न ६०५ — विरुद्ध हेत्वाभास किसे कहते हैं?

उत्तर — जिस हेतु की साध्य से विरुद्ध पदार्थ के साथ व्याप्ति होती है, उसे **विरुद्ध हेत्वाभास** कहते हैं। जैसे — 'शब्द नित्य है, क्योंकि परिणामी है।' यहाँ परिणामीपने की व्याप्ति अनित्य के साथ है,

---

१. प्रश्न — अनुमान के कितने भेद हैं?

उत्तर — अनुमान के **दो** भेद हैं — स्वार्थानुमान और परार्थानुमान। जो अनुमान, परोपदेश के बिना स्वयमेव ही होता है, वह **स्वार्थानुमान** है तथा जो अनुमान, परोपदेश से होता है, वह **परार्थानुमान** है। **(— न्यायदीपिका, ३/§२८—२९)**

नित्य के साथ नहीं है; इसलिए नित्यत्व की सिद्धि के लिए 'परिणामी' हेतु विरुद्ध हेत्वाभास है।

प्रश्न ६०६ — अनैकान्तिक (व्यभिचारी) हेत्वाभास किसे कहते हैं?

उत्तर — जो हेतु पक्ष, सपक्ष और विपक्ष — इन तीनों में व्याप्त होता है, उसे **अनैकान्तिक हेत्वाभास** कहते हैं। जैसे — 'यह स्थान धूमवाला है, क्योंकि यहाँ अग्नि है।' यहाँ 'अग्नि' हेतु पक्ष, सपक्ष और विपक्ष — तीनों में व्यापक होने से अनैकान्तिक हेत्वाभास है।

प्रश्न ६०७ — पक्ष किसे कहते हैं?

उत्तर — जहाँ साध्य सिद्ध किया जाता है, उसे **पक्ष** कहते हैं। जैसे — उक्त दृष्टान्त के अनुसार 'यह स्थान' पक्ष है।

प्रश्न ६०८ — सपक्ष किसे कहते हैं?

उत्तर — अन्यत्र जहाँ साध्य के सद्भाव का निश्चय होता है, उसे **सपक्ष** कहते हैं। जैसे — उक्त दृष्टान्त के अनुसार धूमयुक्त गीले ईंधन की अग्निवाला 'अन्य रसोईघर' सपक्ष है।

प्रश्न ६०९ — विपक्ष किसे कहते हैं?

उत्तर — जहाँ साध्य के अभाव का निश्चय होता है, उसे **विपक्ष** कहते हैं। जैसे — निर्धूम अग्नि से तपा हुआ लोहे का गोला।

प्रश्न ६१० — अकिञ्चित्कर हेत्वाभास किसे कहते हैं?

उत्तर — जो हेतु साध्य की सिद्धि करने में असमर्थ होता है, उसे **अकिञ्चित्कर हेत्वाभास** कहते हैं।

प्रश्न ६११ — अकिञ्चित्कर हेत्वाभास के कितने भेद हैं?

उत्तर — अकिञ्चित्कर हेत्वाभास के **दो** भेद हैं — सिद्धसाधन और बाधितविषय।

प्रश्न ६१२ — सिद्धसाधन हेत्वाभास किसे कहते हैं?

उत्तर — जिस हेतु का साध्य पहले से ही सिद्ध होता है, उसे **सिद्धसाधन हेत्वाभास** कहते हैं। जैसे — अग्नि गर्म है, क्योंकि स्पर्शन इन्द्रिय से ऐसा ही प्रतीत होता है।

प्रश्न ६१३ — बाधितविषय हेत्वाभास किसे कहते हैं?

उत्तर — जिस हेतु के साध्य में प्रत्यक्षादि प्रमाणों से बाधा आती है, उसे **बाधितविषय हेत्वाभास** कहते हैं। जैसे — आत्मा अचेतन है, क्योंकि यह द्रव्य है।

प्रश्न ६१४ — बाधितविषय हेत्वाभास के कितने भेद हैं?

उत्तर — बाधितविषय हेत्वाभास के **अनेक** भेद हैं — प्रत्यक्ष-बाधित, अनुमानबाधित, आगमबाधित, स्ववचनबाधित आदि।

प्रश्न ६१५ — प्रत्यक्षबाधित हेत्वाभास किसे कहते हैं?

उत्तर — जिस हेतु के साध्य में प्रत्यक्ष प्रमाण से बाधा आती है, उसे **प्रत्यक्षबाधित हेत्वाभास** कहते हैं। जैसे — अग्नि ठण्डी है, क्योंकि यह द्रव्य है।

प्रश्न ६१६ — अनुमानबाधित हेत्वाभास किसे कहते हैं?

उत्तर — जिस हेतु के साध्य में अनुमान प्रमाण से बाधा आती है, उसे **अनुमानबाधित हेत्वाभास** कहते हैं। जैसे — 'घास आदि किसी कर्ता के द्वारा बनायी है, क्योंकि ये कार्य हैं।' परन्तु यहाँ इस अनुमान से बाधा आती है कि घास आदि किसी के द्वारा बनायी नहीं है, क्योंकि इनको बनानेवाला कोई शरीरधारी नहीं है। जो वस्तुएँ किसी शरीरधारी के द्वारा बनायी नहीं है, वे किसी कर्ता के द्वारा बनायी नहीं हैं। जैसे — आकाश।

प्रश्न ६१७ — आगमबाधित हेत्वाभास किसे कहते हैं?

उत्तर — जिस हेतु के साध्य में शास्त्रप्रमाण से बाधा आती है; उसे **आगमबाधित हेत्वाभास** कहते हैं। जैसे — पाप सुख को देनेवाला है, क्योंकि यह कर्म है। जो जो कर्म होते हैं, वे वे सुख के देनेवाले होते हैं। यथा — पुण्यकर्म। यहाँ शास्त्रप्रमाण से बाधा आती है, क्योंकि शास्त्र में पाप को सुख का नहीं, दु:ख का देनेवाला लिखा है।

प्रश्न ६१८ — स्ववचनबाधित हेत्वाभास किसे कहते हैं?

उत्तर — जिस हेतु के साध्य में अपने वचन से ही बाधा आती है; उसे **स्ववचनबाधित हेत्वाभास** कहते हैं। जैसे — मेरी माता बाँझ (बन्ध्या) है, क्योंकि पुरुष का संयोग होने पर भी उसके गर्भ नहीं रहता है।

प्रश्न ६१९ — अनुमान के कितने अङ्ग हैं?

उत्तर — अनुमान के **पाँच** अङ्ग हैं — प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनय आदि और निगमन।[१]

प्रश्न ६२० — प्रतिज्ञा किसे कहते हैं?

उत्तर — पक्ष में साध्य के कहने को **प्रतिज्ञा** कहते हैं। जैसे — 'इस पर्वत पर अग्नि है।'

प्रश्न ६२१ — हेतु किसे कहते हैं?

उत्तर — साध्य के अविनाभावी साधन के वचन को **हेतु** कहते हैं। जैसे — 'क्योंकि यह धूमवान है।'

---

१. परीक्षामुख आदि न्यायग्रन्थों में अनुमान के दो ही अङ्ग बताये गये हैं — प्रतिज्ञा और हेतु। वहाँ उदाहरण आदि को अनुमान का अङ्ग नहीं माना गया है, क्योंकि अन्य मतों के साथ वाद करते समय सबल हेतु ही साध्य को सिद्ध करता है, उदाहरण नहीं। उपनय और निगमन भी उसी बात को दोहराते हैं; अत: उदाहरण, उपनय और निगमन को अनुमान का अङ्ग नहीं माना है, लेकिन शिष्यों को समझाते समय अथवा स्वमतवादियों के साथ वीतराग चर्चा करते समय उदाहरण आदि का प्रयोग करने में दोष नहीं है। **(— परीक्षामुखसूत्र ३/३३,४२ एवं न्यायदीपिका ३/§३६)**

प्रश्न ६२२ — उदाहरण किसे कहते हैं?

उत्तर — व्याप्ति के कथनपूर्वक दृष्टान्त के कहने को **उदाहरण** कहते हैं। जैसे — जहाँ-जहाँ धूम है, वहाँ-वहाँ अग्नि है; यथा — रसोईघर। तथा जहाँ-जहाँ अग्नि नहीं है, वहाँ-वहाँ धूम भी नहीं है; यथा — तालाब।

प्रश्न ६२३ — दृष्टान्त किसे कहते हैं?

उत्तर — जहाँ पर साध्य और साधन का सद्भाव या असद्भाव दिखाया जाता है, उसे **दृष्टान्त** कहते हैं। जैसे — रसोईघर अथवा तालाब।

प्रश्न ६२४ — दृष्टान्त के कितने भेद हैं?

उत्तर — दृष्टान्त के दो भेद हैं — अन्वय दृष्टान्त और व्यतिरेक दृष्टान्त।

प्रश्न ६२५ — अन्वय दृष्टान्त किसे कहते हैं?

उत्तर — जहाँ साधन के सद्भाव में साध्य का सद्भाव दिखाया जाता है, उसे **अन्वय दृष्टान्त** कहते हैं। जैसे — रसोईघर में धूम का सद्भाव होने पर अग्नि का सद्भाव दिखाया गया है।

प्रश्न ६२६ — व्यतिरेक दृष्टान्त किसे कहते हैं?

उत्तर — जहाँ साध्य के असद्भाव में साधन का असद्भाव दिखाया जाता है, उसे **व्यतिरेक दृष्टान्त** कहते हैं। जैसे — तालाब में अग्नि का अभाव होने से धूम का अभाव दिखाया गया है।

प्रश्न ६२७ — उपनय किसे कहते हैं?

उत्तर — दृष्टान्त की सदृशता दिखाकर पुन: पक्ष में साधन या हेतु का उपसंहार करना या दुहराना, **उपनय** है। जैसे — 'यह पर्वत भी वैसा ही धूमवान है।'

प्रश्न ६२८ — निगमन किसे कहते हैं?

उत्तर — साधन के उपसंहार के बाद निष्कर्ष निकालकर प्रतिज्ञा का उपसंहार करना या दुहराना, **निगमन** है। जैसे — 'इसलिए यह पर्वत भी

अग्निवान् है।'

प्रश्न ६२९ – हेतु के कितने भेद हैं?

उत्तर – हेतु के **तीन** भेद हैं – केवलान्वयी, केवलव्यतिरेकी और अन्वय-व्यतिरेकी।[१]

प्रश्न ६३० – केवलान्वयी हेतु किसे कहते हैं?

उत्तर – जिस हेतु की पुष्टि में सिर्फ अन्वयदृष्टान्त होता है अथवा जो हेतु पक्ष और सपक्ष में रहता है तथा विपक्ष से रहित होता है, उसे **केवलान्वयी हेतु** कहते हैं। जैसे – जीव अनेकान्तस्वरूप है, क्योंकि सत्स्वरूप है; जो-जो सत्स्वरूप होता है, वह-वह अनेकान्तस्वरूप होता है; यथा – पुद्गल आदि।

प्रश्न ६३१ – केवलव्यतिरेकी हेतु किसे कहते हैं?

उत्तर – जिस हेतु की पुष्टि में सिर्फ व्यतिरेकदृष्टान्त पाया जाता है अथवा जो हेतु पक्ष में रहता है, विपक्ष में नहीं रहता है और सपक्ष से रहित होता है, उसे **केवलव्यतिरेकी हेतु** है। जैसे – जिन्दा शरीर में आत्मा है, क्योंकि इसमें श्वासोच्छ्वास है; जहाँ-जहाँ आत्मा नहीं होता, वहाँ-वहाँ श्वासोच्छ्वास भी नहीं होता; यथा – चौकी आदि।

प्रश्न ६३२ – अन्वयव्यतिरेकी हेतु किसे कहते हैं?

---

१. हेतु के संक्षेप में **दो** भेद हैं – विधिरूप और निषेधरूप। उनके भी विधि-साधक और निषेधसाधक के भेद से **दो-दो** भेद हैं। अर्थात् जब हेतु स्वयं विधिरूप होता है और उसका साध्य भी विधिरूप होता है, तब **विधिसाधक-विधिरूप हेतु** कहलाता है। जब हेतु विधिरूप होता है, परन्तु उसका साध्य निषेधरूप होता है तो **निषेधसाधक-विधिरूप हेतु** कहलाता है। इसी प्रकार जब हेतु निषेधरूप होता है, परन्तु उसका साध्य विधिरूप होता है, तब **विधिसाधक-निषेधरूप हेतु** कहलाता है। लेकिन जब हेतु निषेधरूप होता है और उसका साध्य भी निषेधरूप होता है, तब **निषेधसाधक-निषेधरूप हेतु** कहलाता है। **(– न्यायदीपिका, ३/५२,५८)**

उत्तर – जिस हेतु की पुष्टि में अन्वयदृष्टान्त और व्यतिरेकदृष्टान्त दोनों होते हैं अथवा जो पक्ष और २३४सपक्ष में रहता है और विपक्ष में नहीं रहता है, उसे **अन्वयव्यतिरेकी हेतु** है। जैसे – इस पर्वत पर अग्नि है, क्योंकि यह धूमवाला है; जहाँ-जहाँ धूम होता है, वहाँ-वहाँ अग्नि होती है; यथा – रसोईघर। जहाँ-जहाँ अग्नि नहीं होती है, वहाँ-वहाँ धूम भी नहीं होता है; यथा – तालाब।

प्रश्न ६३३ – आगमप्रमाण किसे कहते हैं?

उत्तर – आप्त के वचन आदि से उत्पन्न होनेवाले पदार्थ के ज्ञान को **आगमप्रमाण** कहते हैं।

प्रश्न ६३४ – आप्त किसे कहते हैं?

उत्तर – परम हितोपदेशक वीतरागी सर्वज्ञदेव को **आप्त** कहते हैं।

५.३ प्रमाण का विषय

प्रश्न ६३५ – प्रमाण का विषय क्या है?[१]

---

१. सामान्य-विशेषात्मक वस्तु ही **प्रमाण का विषय** है। **(– परीक्षामुखसूत्र ४/१)**

प्रश्न – सामान्य किसे कहते हैं?

उत्तर – जो समस्त विशेषों में रहता हुआ भी अपने एकत्व स्वभाव को नहीं छोड़ता है, उसे **सामान्य** कहते हैं।

प्रश्न – सामान्य के कितने भेद हैं?

उत्तर – सामान्य के दो भेद है – विस्तारसामान्य और आयतसामान्य **अथवा** तिर्यक्सामान्य और उर्ध्वतासामान्य।

प्रश्न – विस्तारसामान्य या तिर्यक्सामान्य किसे कहते हैं?

उत्तर – विस्तारविशेष स्वरूप गुणों या प्रदेशों में रहनेवाला सामान्य **विस्तारसामान्य** है। अथवा एककाल में अनेक व्यक्तियों में रहनेवाला सामान्य **तिर्यक्सामान्य** है।

प्रश्न – आयतसामान्य या ऊर्ध्वतासामान्य किसे कहते हैं?

उत्तर – आयतविशेष स्वरूप क्रमभावी पर्यायों में रहनेवाला सामान्य **आयत-सामान्य** है **अथवा** अनेक कालों में एक व्यक्ति में रहनेवाला सामान्य **ऊर्ध्वतासामान्य** है।

(– प्रवचनसार, तत्त्वप्रदीपिका एवं तात्पर्यवृत्ति, ९३)

उत्तर — सामान्य अथवा धर्मी और विशेष अथवा धर्म — दोनों अंशों के समूहरूप वस्तु **प्रमाण का विषय** है।

प्रश्न ६३६ — विशेष किसे कहते हैं?

उत्तर — वस्तु के किसी अंश अथवा भाग को **विशेष** कहते हैं।

प्रश्न ६३७ — विशेष के कितने भेद हैं?

उत्तर — विशेष के **दो** भेद हैं — सहभावीविशेष और क्रमभावीविशेष।[१]

प्रश्न ६३८ — सहभावीविशेष किसे कहते हैं?

उत्तर — वस्तु के सम्पूर्ण भाग और उसकी सब अवस्थाओं में रहनेवाले विशेष को **सहभावीविशेष** अथवा **गुण** कहते हैं।

प्रश्न ६३९ — क्रमभावीविशेष किसे कहते हैं?

उत्तर — वस्तु में क्रम से होनेवाले विशेष को **क्रमभावीविशेष** अथवा **पर्याय** कहते हैं।

५.४ प्रमाणाभास और उसके भेद

प्रश्न ६४० — प्रमाणाभास किसे कहते हैं?

उत्तर — मिथ्याज्ञान को **प्रमाणाभास** कहते हैं।

प्रश्न ६४१ — प्रमाणाभास के कितने भेद हैं?

उत्तर — प्रमाणाभास के **तीन** भेद हैं — संशय, विपर्यय और अनध्यवसाय।

प्रश्न ६४२ — संशय किसे कहते हैं?

उत्तर — विरुद्ध अनेक कोटियों को स्पर्श करनेवाले ज्ञान को **संशय** कहते हैं। जैसे — यह सीप है या चाँदी?

---

१. विशेष के भी दो भेद हैं — विस्तारविशेष और आयतविशेष अर्थात् सहभावीविशेष, गुण और विस्तारविशेष एकार्थवाची है तथा क्रमभावीविशेष, पर्याय और आयतविशेष एकार्थवाची हैं। **(— प्रवचनसार, तत्त्वप्रदीपिका एवं तात्पर्यवृत्ति, ९३)**

प्रश्न ६४३ — विपर्यय किसे कहते हैं?

उत्तर — विपरीत एक कोटी का निश्चय करनेवाले ज्ञान को **विपर्यय** कहते हैं। जैसे — सीप को चाँदी जानना।

प्रश्न ६४४ — अनध्यवास किसे कहते हैं?

उत्तर — यह कुछ है? — ऐसे प्रतिभासरूप ज्ञान को **अनध्यवसाय** कहते हैं। जैसे — मार्ग में चलते हुए तृण आदि का ज्ञान।

५.५ नय और उसके भेद-प्रभेद

प्रश्न ६४५ — नय किसे कहते हैं?

उत्तर — वस्तु के एकदेश को जाननेवाले ज्ञान को **नय** कहते हैं।

प्रश्न ६४६ — नय के कितने भेद हैं?[१]

उत्तर — नय के **दो** भेद हैं — निश्चयनय और व्यवहारनय (उपनय)।

प्रश्न ६४७ — निश्चयनय किसे कहते हैं?

उत्तर — वस्तु के किसी वास्तविक अंश को ग्रहण करनेवाले ज्ञान को **निश्चयनय** कहते हैं। जैसे — मिट्टी के घड़े को, मिट्टी का घड़ा कहना।

प्रश्न ६४८ — व्यवहारनय (उपनय) किसे कहते हैं?

उत्तर — किसी निमित्त के वश से एक पदार्थ को दूसरे पदार्थरूप जाननेवाले ज्ञान को **व्यवहारनय** (उपनय) कहते हैं। जैसे — मिट्टी के घड़े को, घी के रहने के निमित्त से घी का घड़ा कहना।

प्रश्न ६४९ — निश्चयनय के कितने भेद हैं?

उत्तर — निश्चयनय के **दो** भेद हैं — द्रव्यार्थिकनय और पर्यायार्थिकनय।

---

१. नयों के भेद-प्रभेदों का विस्तार नयचक्र आदि ग्रन्थों से जानना चाहिए।

प्रश्न ६५० — द्रव्यार्थिकनय किसे कहते हैं?

उत्तर — जो नय, द्रव्य अर्थात् सामान्य को ग्रहण करता है, उसे **द्रव्यार्थिकनय** कहते हैं।

प्रश्न ६५१ — पर्यायार्थिकनय किसे कहते हैं?

उत्तर — जो नय, विशेष (गुण अथवा पर्याय) को विषय करता है, उसे **पर्यायार्थिकनय** कहते हैं।

प्रश्न ६५२ — द्रव्यार्थिकनय के कितने भेद हैं?

उत्तर — द्रव्यार्थिकनय के **तीन** भेद हैं — नैगम, संग्रह और व्यवहार।

प्रश्न ६५३ — नैगमनय किसे कहते हैं?

उत्तर — जो नय दो पदार्थों में से एक को गौण और दूसरे को प्रधान करके भेद अथवा अभेद को विषय करनेवाला होता है, उसे **नैगमनय** कहते हैं। अथवा पदार्थ के संकल्प को ग्रहण करनेवाला ज्ञान **नैगमनय** है। जैसे — कोई आदमी रसोई में चावल लेकर चुन रहा था। किसी ने उससे पूछा कि 'क्या कर रहे हो?' तब उसने कहा कि 'भात बना रहा हूँ।' यहाँ चावल और भात में अभेदविवक्षा है। अथवा चावलों में भात का संकल्प है।

प्रश्न ६५४ — संग्रहनय किसे कहते हैं?

उत्तर — जो नय अपनी जाति का विरोध नहीं करके अनेक विषयों को एकपने से ग्रहण करता है, उसे **संग्रहनय** कहते हैं। जैसे — जीव के कहने से चारों गति के सब जीवों का ग्रहण होता है।

प्रश्न ६५५ — व्यवहारनय (द्रव्यार्थिकनय का एक भेद) किसे कहते हैं?

उत्तर — जो नय, संग्रहनय से ग्रहण किये हुए पदार्थों में विधिपूर्वक भेद करता है, उसे **व्यवहारनय (द्रव्यार्थिकनय का एक भेद)** कहते हैं। जैसे — जीव के त्रस, स्थावर आदि भेद करना।

प्रश्न ६५६ — पर्यायार्थिकनय के कितने भेद हैं?

उत्तर — पर्यायार्थिकनय के **चार** भेद हैं — ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ़, और एवंभूत।

प्रश्न ६५७ — ऋजुसूत्रनय किसे कहते हैं?

उत्तर — जो नय, भूत-भविष्यत् की अपेक्षा नहीं करके वर्तमान पर्यायमात्र को ग्रहण करता है, उसे **ऋजुसूत्रनय** कहते हैं।

प्रश्न ६५८ — शब्दनय किसे कहते हैं?

उत्तर — जो नय, लिङ्ग, कारक, वचन, काल, उपसर्ग आदि के भेद से पदार्थ को भेदरूप ग्रहण करता है, उसे **शब्दनय** कहते हैं। जैसे — दार, भार्या, कलत्र। ये तीनों भिन्न-भिन्न लिङ्ग के शब्द एक ही स्त्री पदार्थ के वाचक हैं; अतः यह नय, स्त्री पदार्थ को तीन भेदरूप ग्रहण करता है। इसी प्रकार कारक आदि के भी दृष्टान्त जानना चाहिए।

प्रश्न ६५९ — समभिरूढ़नय किसे कहते हैं?

उत्तर — जो नय, लिङ्ग आदि का भेद न होने पर भी पर्यायवाची शब्दों के भेद से पदार्थ को भेदरूप ग्रहण करता है, उसे **समभिरूढ़नय** कहते हैं। जैसे — इन्द्र, शक्र, पुरन्दर। यद्यपि ये तीनों एक ही लिङ्ग के पर्यायवाची शब्द देवराज के वाचक हैं, तथापि यह नय, देवराज को तीन भेदरूप ग्रहण करता है।

प्रश्न ६६० — एवंभूतनय किसे कहते हैं?

उत्तर — जो नय, जिस शब्द का जो क्रियारूप अर्थ है, उसी

क्रियारूप से परिणमित पदार्थ को ग्रहण करता है, उसे **एवंभूतनय** कहते हैं। जैसे – किसी व्यक्ति को पूजा करते समय ही पुजारी कहना।

प्रश्न ६६१ – व्यवहारनय (उपनय) के कितने भेद हैं?

उत्तर – व्यवहारनय (उपनय) के **तीन** भेद हैं – सद्भूत व्यवहारनय, असद्भूत व्यवहारनय और उपचरित व्यवहारनय अथवा उपचरित-असद्भूत व्यवहारनय।

प्रश्न ६६२ – सद्भूत व्यवहारनय किसे कहते हैं?

उत्तर – जो नय, एक अखण्ड द्रव्य को भेदरूप से विषय करता है, उसे **सद्भूत व्यवहारनय** कहते हैं। जैसे – जीव के केवलज्ञान आदि अथवा मतिज्ञान आदि गुण हैं।

प्रश्न ६६३ – असद्भूत व्यवहारनय किसे कहते हैं?

उत्तर – जो नय, मिले हुए भिन्न पदार्थों को अभेदरूप से ग्रहण करता है, उसे **असद्भूत व्यवहारनय** कहते हैं। जैसे – यह शरीर मेरा है अथवा मिट्टी के घड़े को घी का घड़ा कहना।

प्रश्न ६६४ – उपचरित व्यवहारनय अथवा उपचरित-असद्भूत व्यवहारनय किसे कहते हैं?

उत्तर – जो नय, अत्यन्त भिन्न पदार्थों को अभेदरूप से ग्रहण करता है, उसे **उपचरित-असद्भूत व्यवहारनय** कहते हैं। जैसे – हाथी, घोड़ा, महल, मकान आदि मेरे हैं।

५.६ निक्षेप और उसके भेद

प्रश्न ६६५ – निक्षेप किसे कहते हैं?

उत्तर – जो युक्तिपूर्वक युक्तिसंगत मार्ग से होते हुए प्रयोजनवश नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव में पदार्थ को स्थापन करता है, उसे **निक्षेप** कहते हैं।

प्रश्न ६६६ – निक्षेप के कितने भेद हैं?

उत्तर – निक्षेप के **चार** भेद हैं – नामनिक्षेप, स्थापनानिक्षेप, द्रव्यनिक्षेप और भावनिक्षेप।

प्रश्न ६६७ – नामनिक्षेप किसे कहते हैं?

उत्तर – जिस पदार्थ में जो गुण नहीं है, उसको उस नाम से कहना **नामनिक्षेप** है। जैसे – किसी ने अपने लड़के का नाम हाथीसिंह रखा है, परन्तु उसमें हाथी और सिंह दोनों के गुण नहीं हैं।

प्रश्न ६६८ – स्थापनानिक्षेप किसे कहते हैं?

उत्तर – साकार (तदाकार) अथवा निराकार (अतदाकार) पदार्थ में 'यह वही है' – इस प्रकार अवधान (मनायोगपूर्वक निश्चय) करके निक्षेप करने को **स्थापनानिक्षेप** कहते हैं। जैसे – 'पार्श्वनाथ के प्रतिबिम्ब को पार्श्वनाथ कहना अथवा शतरंज के मोहरों को हाथी, घोड़ा आदि कहना।

प्रश्न ६६९ – नामनिक्षेप और स्थापनानिक्षेप में क्या अन्तर है?

उत्तर – नामनिक्षेप में मूल पदार्थ की तरह सत्कार आदि की प्रवृत्ति नहीं होती, परन्तु स्थापनानिक्षेप में वैसी प्रवृत्ति होती है। जैसे – किसी ने अपने लड़के का नाम पार्श्वनाथ रख लिया तो उस लड़के का सत्कार पार्श्वनाथ की तरह नहीं होता, परन्तु पार्श्वनाथ की प्रतिमा की पूजा आदि भगवान पार्श्वनाथ के समान ही होती है।

प्रश्न ६७० – द्रव्यनिक्षेप किसे कहते हैं?

उत्तर – आगामी पर्याय की योग्यता रखनेवाले पदार्थ को **द्रव्यनिक्षेप** कहते हैं – जैसे राजा के पुत्र को राजा कहना।

प्रश्न ६७१ – भावनिक्षेप किसे कहते हैं?

उत्तर – वर्तमान पर्यायसंयुक्त वस्तु को **भावनिक्षेप** कहते हैं। जैसे – राज्य करते हुए पुरुष को राजा कहना।

।। इति पञ्चमोऽध्यायः समाप्तः।।

ग्रन्थकर्त्ता का अन्तिम वक्तव्य

(दोहा)

बन्दों श्रीमहावीर जिन, वर्धमान गुणखान।
भव्य-सरोज-समूह रवि, करन सकल कल्यान॥ १॥
प्रान्त ग्वालियर में बसै, भिंड नगर शुभथान।
श्रीयुत माधवसिंह नृप, न्यायनीति गुणखान॥ २॥
अर्गलपुरवासी वणिक, जाति बरैया जान।
लछमनसुत गोपाल तँह, कीनी आय दुकान॥ ३॥
इन्द्रप्रस्थवासी सुजन, मोतीलाल सुजान।
उदासीन संसार सों खोजत निज कल्यान॥ ४॥
आये या पुर भिंड में, ढूँढ़त तत्त्वज्ञान।
तिन निमित्त लघुग्रन्थ यह, रच्यो स्व-परहित जान॥ ५॥
श्रीयुत पन्नालालजी, अति सज्जन गुणवान।
तिन निज काज विहाय सब, करी सहाय सुजान॥ ६॥
अल्पबुद्धि मम विषय यह, जिन-सिद्धांत महान।
भूल देखिके शोधियो, करियो क्षमा सुजान॥ ७॥
जो सज्जन इस ग्रन्थ को, पढ़ें नित्य धरि ध्यान।
ते श्री जिन-सिद्धांत में, करें प्रवेश सुजान॥ ८॥
विक्रम संवत् सहस इक, नौसै छ्यासठि जान।
कृष्णपक्ष श्रावण प्रथम, तिथि नवमी दिन भान॥ ९॥
जिन सिद्धांत प्रवेशिका, या दिन पूरन जान।
पढ़हु पढ़ावहु चिर जियहु, यावच्चन्द्र-सुभान॥ १०॥

॥ इति श्रीजैन-सिद्धान्त-प्रवेशिका समाप्ता॥

अर्थ — पहले दोहे में अन्तिम शासननायक का स्मरण करते हुए कहा है — मैं अनन्त गुणों की खानस्वरूप श्रीवर्द्धमान-महावीरस्वामी को नमस्कार करता हूँ। जैसे सूर्योदय के निमित्त से कमलों के समूह विकसित हो जाते हैं, उसी प्रकार श्रीजिनेन्द्र परमात्मा समस्त भव्य जीवों का कल्याण करने के लिए सूर्य के समान हैं॥ १॥

दूसरे दोहे में लौकिक शासननायक का स्मरण करते हुए कहा है — भारतदेश में ग्वालियर प्रान्त (तत्कालीन प्रान्त) के अन्तर्गत एक भिण्ड नगर नामक शुभस्थान है। यहाँ के राजा श्रीयुत माधव सिंह हैं, जो न्याय-नीति आदि गुणों की खान हैं॥ २॥

तीसरे दोहे में लेखक ने अपना संक्षिप्त परिचय दिया है — अर्गलपुर (आगरा) के रहनेवाले, वरैया जाति में उत्पन्न श्री लक्ष्मणदासजी के सुपुत्र गोपालदास (लेखक) ने व्यवसाय के उद्देश्य से भिण्ड में आकर एक दुकान खोली॥ ३॥

चौथे-पाँचवे दोहे में ग्रन्थरचना के निमित्त का वर्णन किया है — इन्द्रप्रस्थ (दिल्ली) के रहनेवाले अच्छे विचारवान पुरुष श्री मोतीलाल नामक सज्जन संसार से उदासीन होकर, अपनी आत्मा के कल्याण की खोज में प्रयत्नशील थे॥ ४॥

तत्त्वज्ञान-प्राप्ति की ललक से खोजते-खोजते, वे यहाँ भिण्ड नगर में आये और उन्हें तत्त्वज्ञान का बोध देने के निमित्त से लेखक ने अपना तथा पर का हित जानकर इस लघु ग्रन्थ की रचना की॥ ५॥

छठवें दोहे में भिण्ड के ही एक साधर्मी का आभार प्रदर्शन किया है — यहाँ के एक साधर्मी श्रीयुत पन्नालालजी हैं, वे अति सज्जन और गुणवान हैं; उन्होंने अपना सब काम छोड़कर इस कार्य को महत्त्वपूर्ण जानकर हमारी बहुत सहायता की॥ ६॥

सातवें दोहे में लेखक अपनी लघुता प्रदर्शित करते हुए लिखते हैं — मैं अल्पबुद्धिवाला हूँ और श्री जिनेन्द्र भगवान द्वारा कथित सिद्धान्त अतिगहन और महान है; अत: विशेष ज्ञानीजन, इसमें कोई भूल देखें तो उसका सुधार करने की कृपा करें और हमें क्षमा करें ॥ ७ ॥

आठवें दोहे में श्री जैन सिद्धान्त प्रवेशिका के अध्ययन की प्रेरणा देते हुए वे लिखते हैं — जो सज्जन इस ग्रन्थ को निरन्तर एकाग्रचित्त होकर पढ़ेंगे, उनका श्री जिनेन्द्रकथित सिद्धान्त में अच्छी तरह प्रवेश हो जायेगा ॥ ८ ॥

नौवें और दशवें दोहे में लेखक इस ग्रन्थ के पूर्ण होने की तिथि का वर्णन करते हैं — विक्रम संवत् एक हजार नौ सौ छ्यासठ १९६६ में प्रथम श्रावण की कृष्णपक्ष नवमी के दिन यह ग्रन्थ श्री जैन सिद्धान्त प्रवेशिका सम्पूर्ण हुआ।

अन्तिम पंक्ति में लेखक आशीर्वादस्वरूप वचन कहते हैं — जो इस ग्रन्थ को पढ़ेगा और पढ़ायेगा; वह जबतक सूरज और चाँद हैं, तबतक जियेगा अर्थात् मोक्ष प्राप्त करके सिद्धशिला में अनन्तकाल तक आत्मीक अनन्त सुख का भोग भोगेगा ॥ ९-१० ॥

॥ इति श्री जैनसिद्धान्त प्रवेशिका सम्पूर्ण ॥

धर्म की परीक्षा

जब कोई व्यक्ति एक पैसे की हाँडी भी लेता है, तब उसको खूब ठोक-बजाकर परीक्षा करके लेता है। इसीप्रकार धर्म-साधन करनेवालों को भी चाहिए कि पहले **धर्म की परीक्षा** कर लें, बाद में उसका साधन। जो व्यक्ति परीक्षा किये बिना ही किसी कार्य में प्रवृत्ति करते हैं, वे अन्त में अभिमत फल को प्राप्त नहीं करते। **— गुरुवर्य गोपालदास वरैया, जैनमित्र, २/६, पृष्ठ १**

तीनलोक सम्बन्धी चित्रावली

चित्र क्रमाङ्क १

तीनलोक

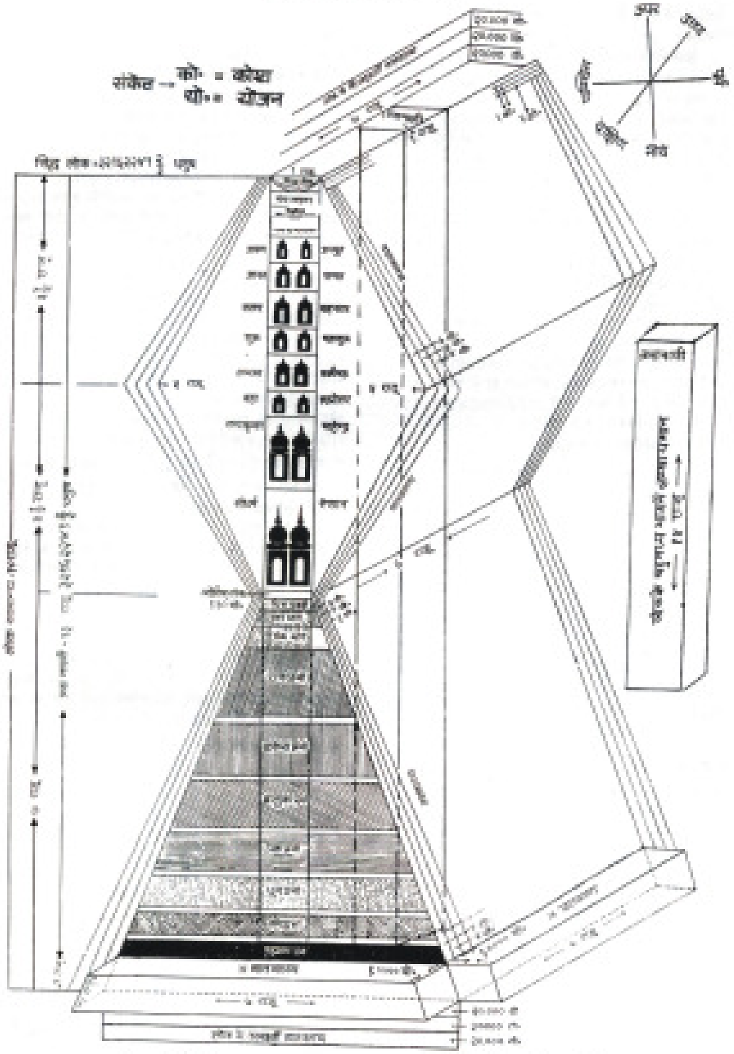

लोक के नीचे एक राजू प्रमाण नामक स्थावर लोक को चारों ओर से घेरकर अवस्थित १०,००० योजन मोटा वातवलय।

(सन्दर्भ - अध्याय १, प्रश्न ५६)

चित्र क्रमाङ्क २

जम्बूद्वीप

नोट - प्रत्येक पर्वतीय कूट पर उस-उस नामवाले व्यन्तर देव व देवी निवास करते हैं।

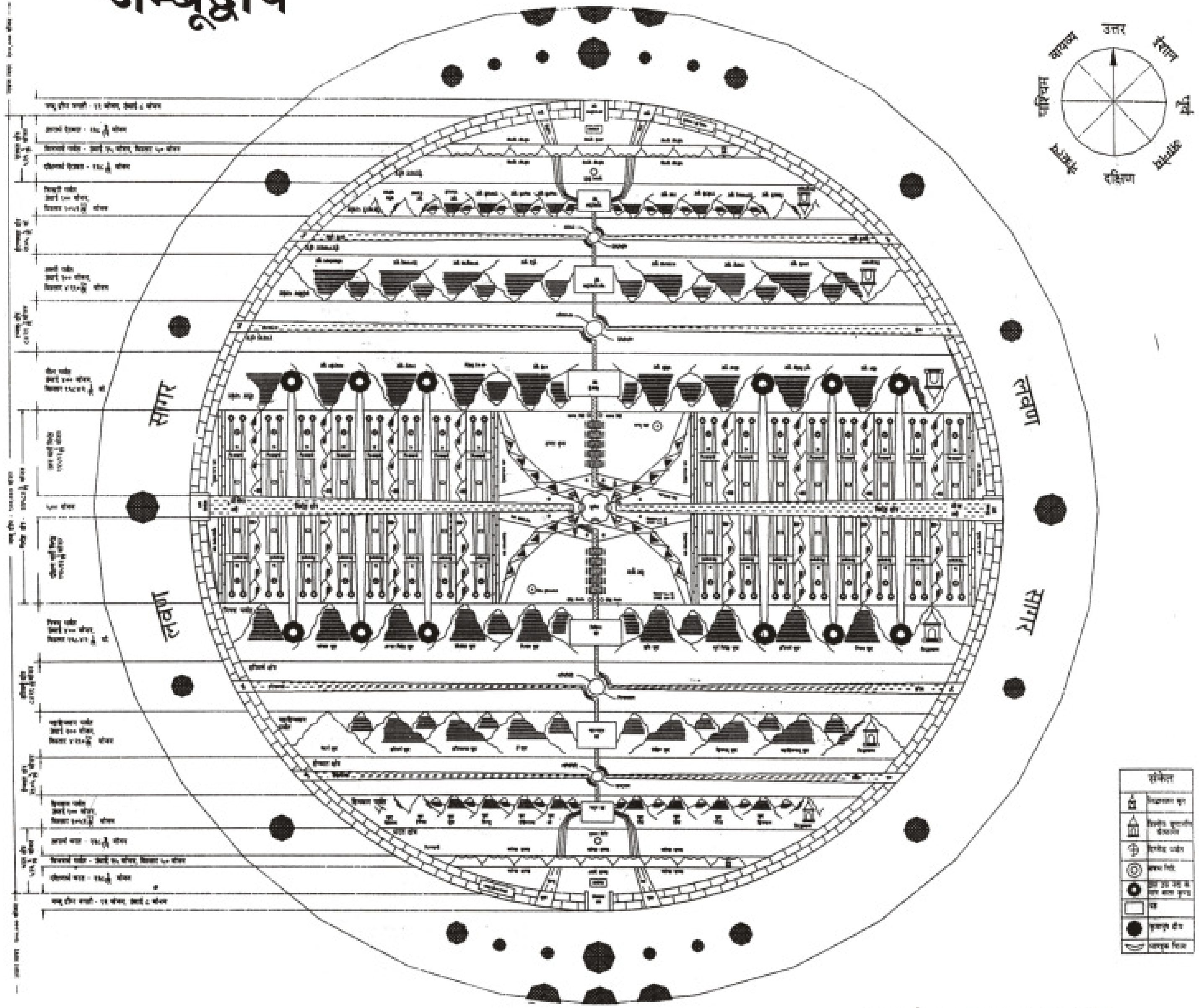

(सन्दर्भ - अध्याय ३, प्रश्न ४७१)

चित्र क्रमाङ्क ३

तीनलोक

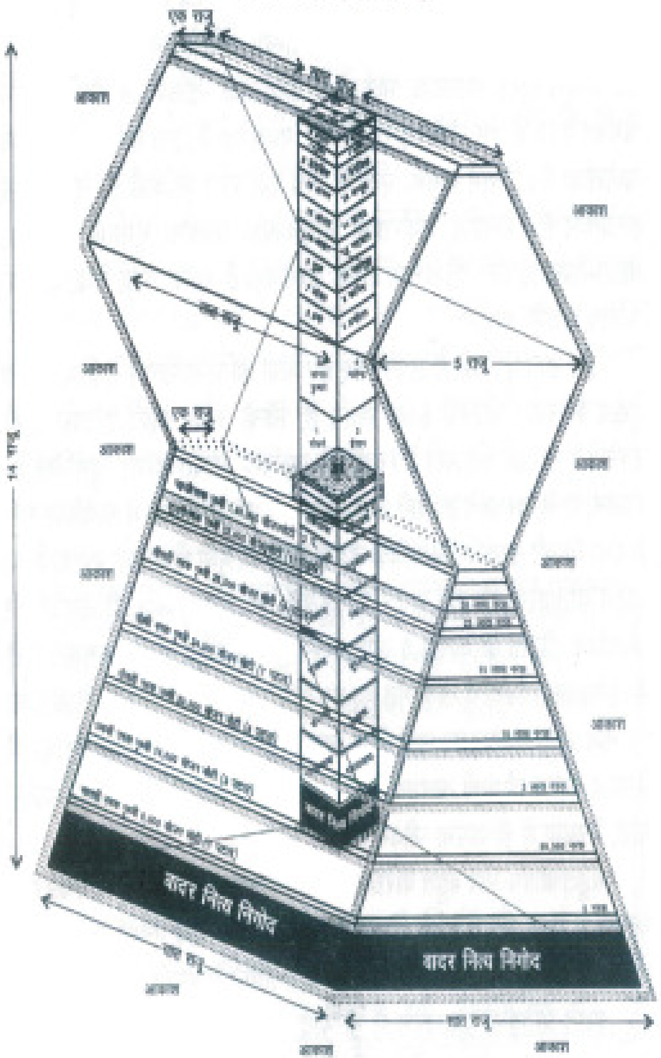

तीन लोक का क्षेत्रफल - 343 घन राजू
उर्ध्व लोक - 1 लाख 40 योजन कम 7 राजू ऊँचा
मध्यलोक - 1 लाख 40 योजन ऊँचा
अधोलोक - 7 राजू ऊँचा
लोक - 14 राजू कुल ऊँचाई

(सन्दर्भ - अध्याय १, प्रश्न ५६)

चित्र क्रमाङ्क ४

त्रसनाड़ी

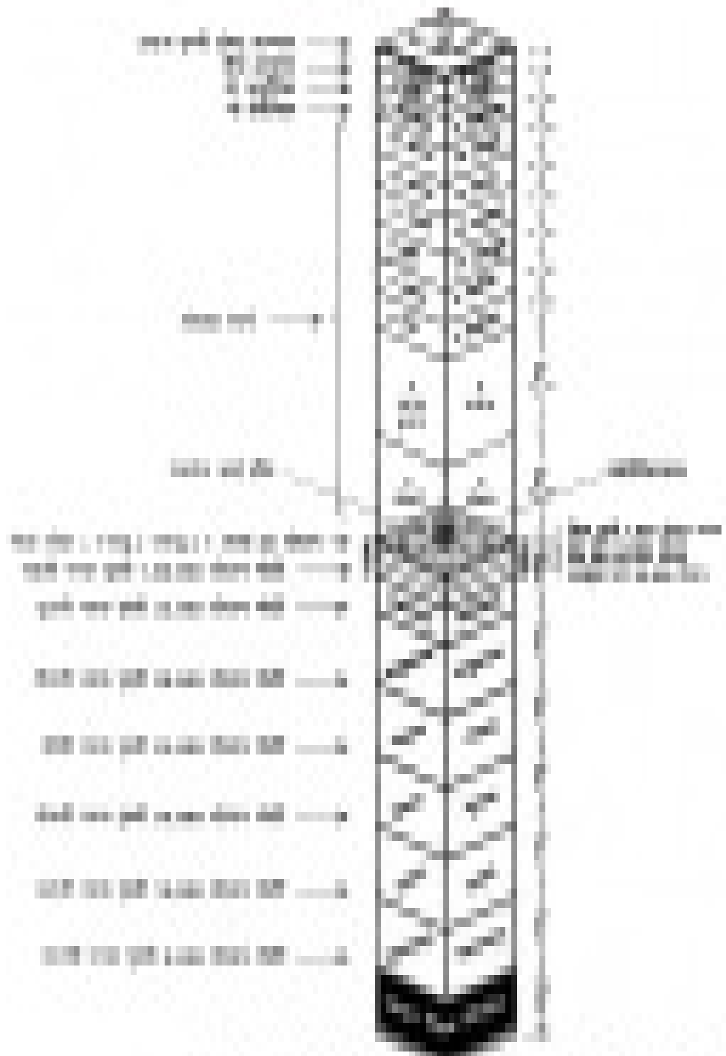

चित्र क्रमांक ५

ऊर्ध्वलोक

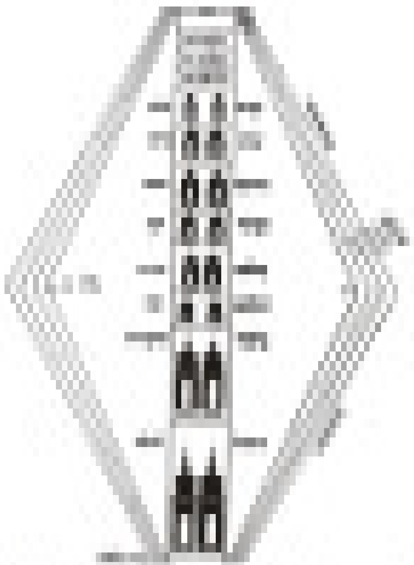

चित्र क्रमांक ६

मध्यलोक

चित्र क्रमांक ७

अधोलोक

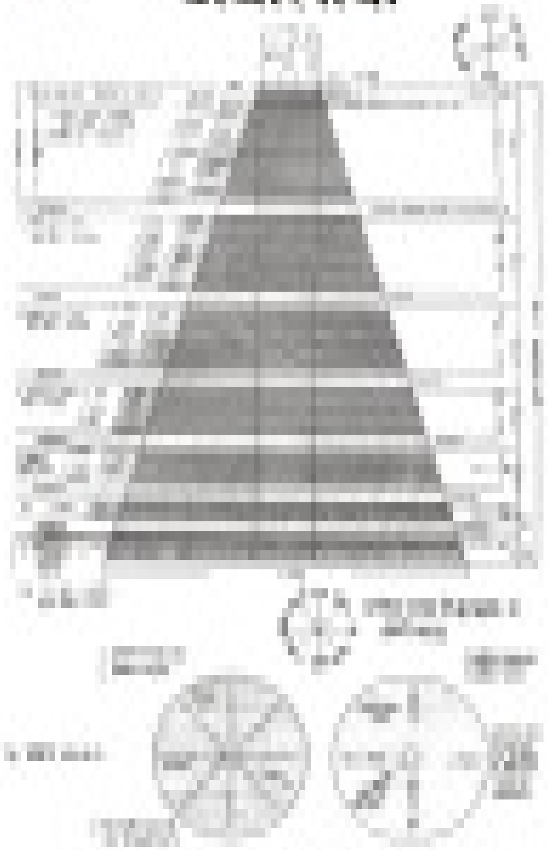

चित्र क्रमांक ८

भरतक्षेत्र

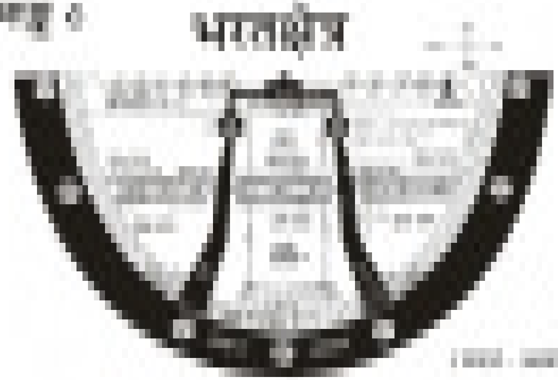

चित्र क्रमाङ्क ९

सुमेरु पर्वत

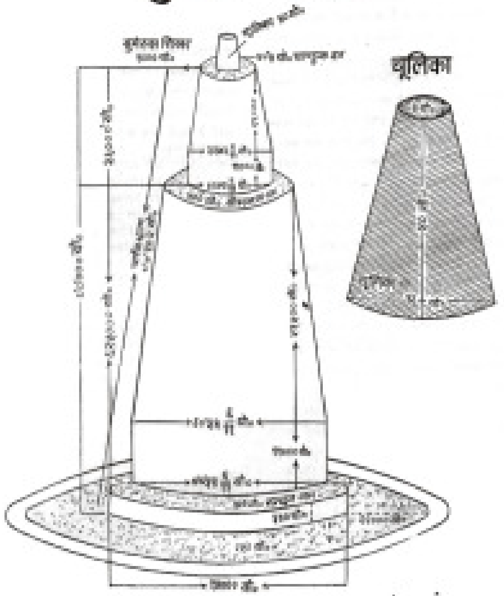

(सन्दर्भ - अध्याय ३, प्रश्न ४५०, ४५१)

चित्र क्रमाङ्क १०

देवकुरु-उत्तरकुरु

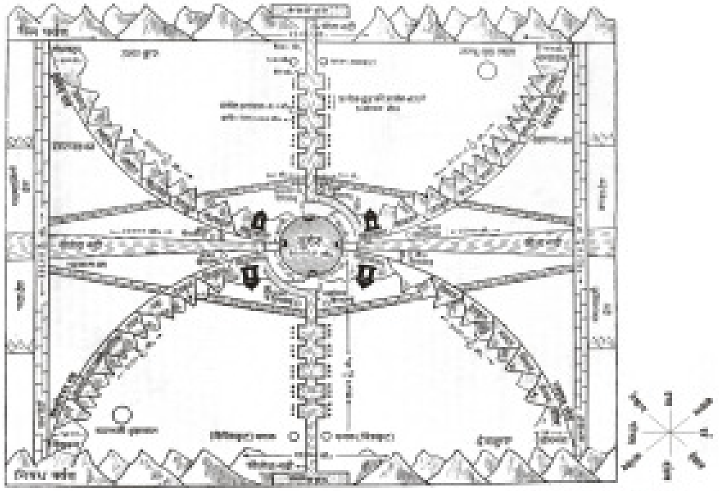

(सन्दर्भ - अध्याय ३, प्रश्न ......)

चित्र क्रमाङ्क ११

लवण सागर

अढ़ाईद्वीप :
मनुष्यलोक

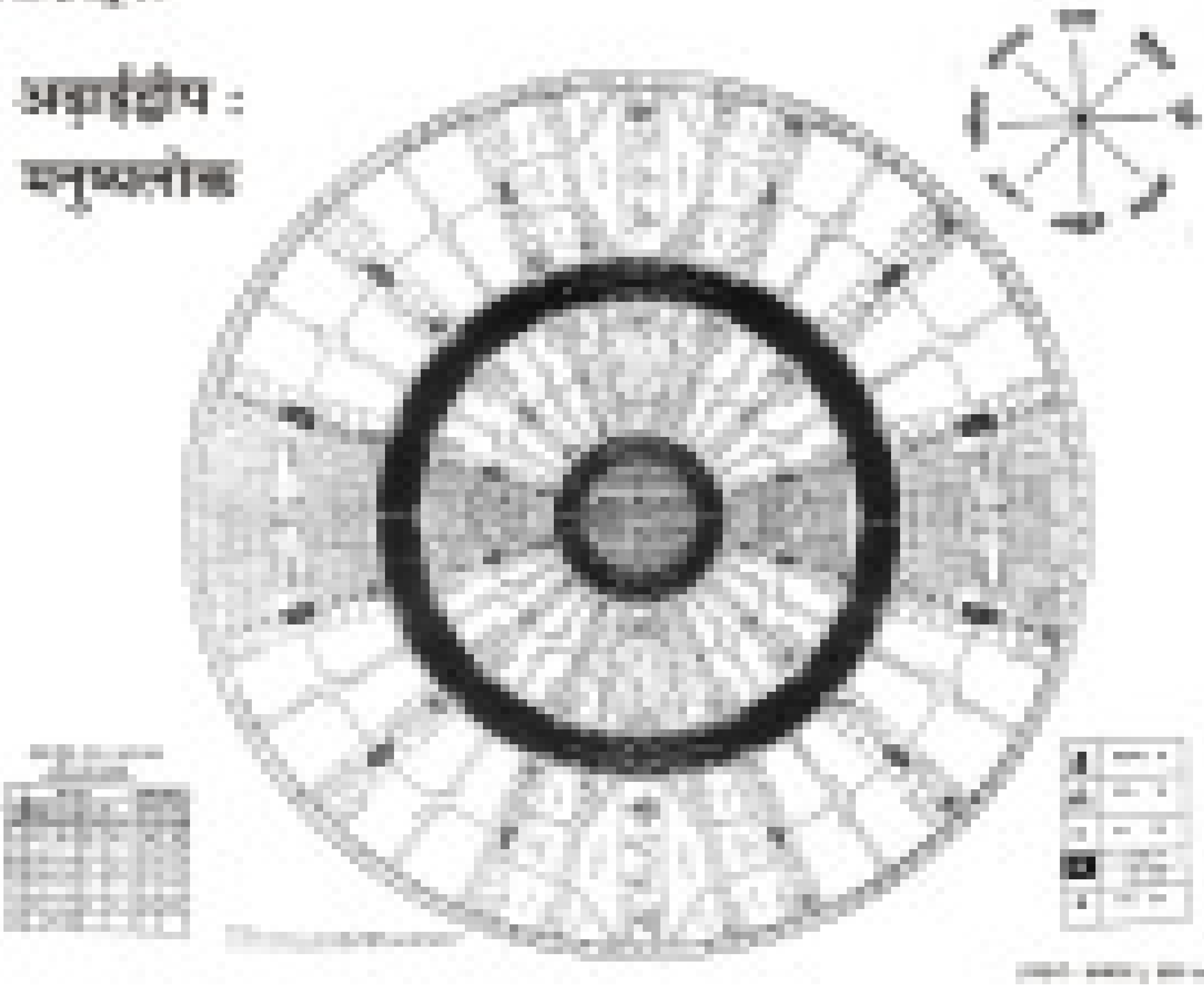

चित्र क्रमाङ्क १३

मानुषोत्तरपर्वत

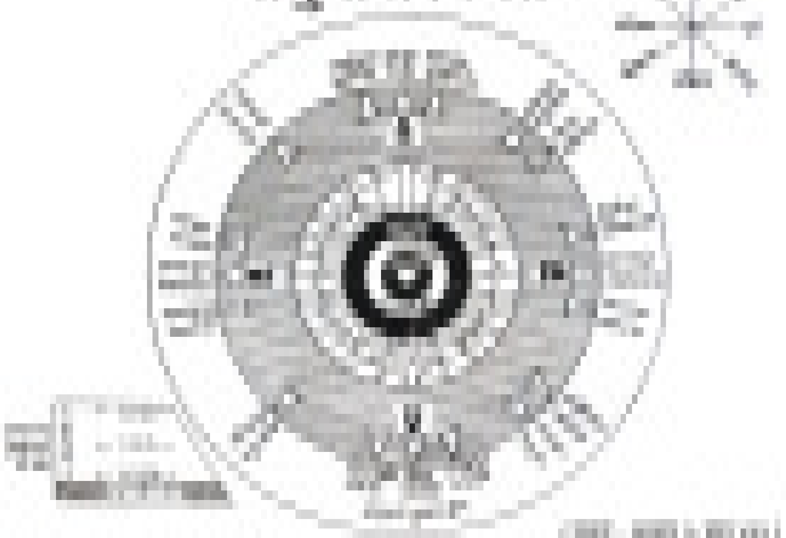

चित्र क्रमाङ्क १४

नन्दीश्वरद्वीप

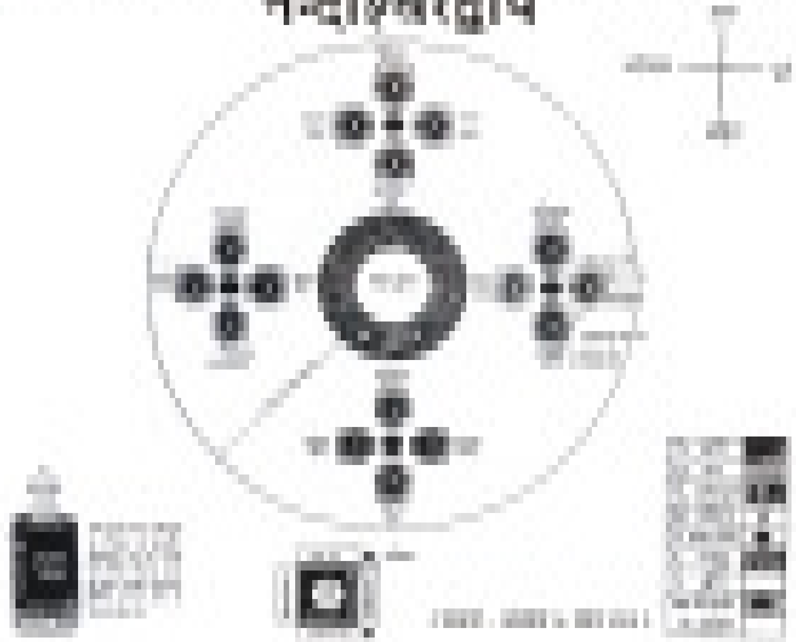

अकारादि क्रमानुसार विषयानुक्रमणिका

विषय	प्रश्नाङ्क
अ	
अकिञ्चित्कर हेत्वाभास/भेद	६१०,६११
अगुरुलघुत्वगुण	०११
अगुरुलघुत्व प्रतिजीवीगुण	१३३
अगुरुलघु नामकर्म	१९५
अघातियाकर्म/भेद	२३१, २४०
अङ्गोपाङ्ग नामकर्म	१७२
अचक्षुदर्शन	१०३
अतिव्याप्ति दोष	५७०
अत्यन्ताभाव	०७५
अद्धापल्य	२५४
अधर्मद्रव्य	०३२
अध:करण/दृष्टान्त	५२८, ५३१
अधोलोक / विवरण	४५६, ४६८
अनध्यवसाय	६४४
अनन्तानुबन्धि अविरति से बन्ध	३२७
अनन्तानुबन्धी कषाय	१६०
अनादेय नामकर्म	२१८
अनात्मभूत लक्षण	५६५
अनिवृत्तिकरण गुणस्थान/भाव	४८६,५३०
अनिवृत्तिकरण गुणस्थान में उदय	५३९
अनिवृत्तिकरण गुणस्थान में बन्ध	५३८
अनिवृत्तिकरण गुणस्थान में सत्त्व	५४०
अनुभागबन्ध	२६०
अनुभागरचना का क्रम	२९१
अनुमान/भेद	६०१
अनुमान के अङ्ग/अन्य कथन	६१९
अनुमानबाधित	६१६
अनुजीवीगुण	०६८
अनैकान्तिक हेत्वाभास	६०६
अन्त:करणरूप उपशम	२६६
अन्तर्मुहूर्त	२५६
अन्तरायकर्म/उसका बन्ध/भेद	२२६, २२७
अन्तिम गुणहानि	२८५
अन्यगुणहानियों का द्रव्य-परिमाण	२८६
अन्योन्याभ्यस्त राशि	२८४
अन्योन्याभाव/अन्य परिभाषा	०७४
अन्वयदृष्टान्त	६२५
अन्वय-व्यतिरेकी हेतु	६३२
अपकर्षण	२७८
अपर्याप्ति नामकर्म	२०७
अपूर्वकरण गुणस्थान/भाव	४८६, ५२९
अपूर्वकरण गुणस्थान में उदय	५३६
अपूर्वकरण गुणस्थान में बन्ध	५३५
अपूर्वकरण गुणस्थान में सत्त्व	५३७
अप्रतिष्ठित प्रत्येक	३९५
अप्रत्याख्यानावरणकषाय	१६१
अप्रत्याख्यानावरण अविरति से बन्ध	३२९
अप्रमत्तविरत गुणस्थान/भाव	४८६, ५१५
अप्रमत्तविरत गुणस्थान के भेद	५१६
अप्रमत्तविरतगुणस्थान में उदय	५३३
अप्रमत्तविरतगुणस्थान में बन्ध	५३२
अप्रमत्तविरतगुणस्थान में सत्त्व	५३४
अबाधित	५९९
अभव्यत्वगुण	१२०
अभाव/भेद	०७०,०७१
अभाव का स्वरूप जानने का फल	०७५
अयश:कीर्ति नामकर्म	२२०
अयोगकेवली गुणस्थान	४८६, ५५७
अयोगकेवली गुणस्थान में उदय	५५९
अयोगकेवली गुणस्थान में बन्ध	५५८
अयोगकेवली गुणस्थान में सत्त्व	५६०

विषय	प्रश्नाङ्क
अर्थ के बारह भेद	०९९
अर्थपर्याय/भेद	०४४, ०४५
अर्थावग्रह	०९६
अर्द्धनाराचसंहनन	१८७
अलक्ष्य	५७१
अलोकाकाश	०५५
अवधिदर्शन	१०४
अवधिज्ञान	५८२
अवगाह प्रतिजीविगुण	१३२
अवग्रह	०९०
अवाय	०९२
अवान्तरसत्ता	०८३
अविनाभाव सम्बन्ध/भेद	५९५
अविभागप्रतिच्छेद	२७४
अविरतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान	४८६, ५०३
अविरतसम्यग्दृष्टि में उदय	५०५
अविरतसम्यग्दृष्टि में बन्ध	५०४
अविरतसम्यग्दृष्टि में सत्त्व	५०६
अविरति/बन्ध	३१९, ३२७-३२९
अविरति के भेद/अन्य प्रकार से	३२०
अव्याप्ति दोष	५६९
अव्याबाध प्रतिजीवीगुण	१३१
अशुभ नामकर्म	२१२
असंख्यात द्वीप-समुद्र	४७१
असंप्राप्तासृपाटिका संहनन	१८९
असंभव दोष	५७२
असली सुख का स्वरूप	४७३
असली सुख क्यों नहीं?	४७४
असली सुख कब?	४७५
असमर्थकारण	२९७
असद्भूतव्यवहारनय	६६३
असातावेदनीय का बन्ध	१४८

विषय	प्रश्नाङ्क
असाधारण पाँच भाव	३४२
असिद्ध/असिद्धहेत्वाभास	६००, ६०४
अस्तिकाय/भेद	०६५, ०६६
अस्तित्वगुण	००७
अहमिन्द्र	४५४
आ	
आकाश द्रव्य/भेद नहीं	३३, ५२
आकाश का स्थान	५३
आगमप्रमाण	६३३
आगमबाधित	६१७
आठों कर्मों की स्थिति	२५०, २५१
आतप नामकर्म	१९८
आत्मभूतलक्षण	५६४
आदेय नामकर्म/अन्य परिभाषा	२१७
आनुपूर्वी नामकर्म/अन्य परिभाषा	१९४
आप्त	६३४
आभ्यन्तरक्रिया	१०६
आभ्यन्तर-उपकरण	३७३
आभ्यन्तरनिवृत्ति	३७०
आयुकर्म/भेद	१६४, १६५
आवली	२५७, ४९४
आस्रव/भेद	२९२, २९३
आस्रवों के स्वामी	३३७
आहार	४२८
आहारकशरीर	०२४
आहारकमार्गणा के भेद	४९९
आहारवर्गणा	०२१
आज्ञानिक मिथ्यात्व	३१७
इ	
इतर निगोद	३९९
इन्द्र	४५३
इन्द्रिय/भेद	३६४, ३६५, ३८४
इष्ट	५९८

विषय	प्रश्नाङ्क
ई	
ईहा ज्ञान	०९१
ईर्यापथ आस्रव	३३६
उ	
उच्च गोत्रकर्म/उसका बन्ध	२२४
उच्छ्वास नामकर्म	२०१
उत्कर्षण	२७७
उत्पाद	०४८
उदय/अन्य कथन	२६२, ४९०
उदयाभावी क्षय	२७६
उदाहरण	६२२
उदीरणा	२६३
उद्योत नामकर्म	१९९
उपकरण/भेद	३७१, ३७२
उपघात नामकर्म	१९६
उपचरित (असद्भूत) व्यवहारनय	६६४
उपनय	६२७
उपपादजन्म	४२८
उपयोग/भेद	३५४, ३५५, ३७७
उपशम/भेद	२६४, २६५
उपशमश्रेणी/गुणस्थान	५२२, ५२५
उपशान्तमोह गुणस्थान/भाव	४८६, ५४५
उपशान्तमोह गुणस्थान में उदय	५४७
उपशान्तमोह गुणस्थान में बन्ध	५४६
उपशान्तमोह गुणस्थान में सत्त्व	५४८
उपादानकारण	३००
ऊ	
ऊर्ध्वलोक/विवरण	४६९
ऋ	
ऋजुसूत्रनय	६५७
ए	
एक साथ कितने शरीर	०३०
एकत्वप्रत्यभिज्ञान	५९१

विषय	प्रश्नाङ्क
एक मुहूर्त के श्वासोच्छ्वास	२५९
एकेन्द्रिय के ४२ भेद	४३७
एवंभूतनय	६६०
ऐ	
ऐकान्तिक मिथ्यात्व	३१४
औ	
औदयिकभाव/भेद	३४६, ३५१
औदारिकशरीर	०२२
औपशमिकभाव/भेद	३४२, ३४८
क	
कर्म/कर्मबन्ध	१३८
कर्मबन्ध के कारण	१४०
कर्मबन्ध के भेद	१३९
कर्मभूमिज जीव के १२ भेद	४४१
कल्पातीतदेव/भेद	४५२, ४५४
कल्पोपपन्नदेव/भेद	४५१, ४५३
कषाय/विवरण	१११, ३२३, ४०५
कषाय के भेद	१५८, ४०६
कषाय कितनी प्रकृतियों का बन्ध	३३१
काय	३८५
कारण/भेद	२९४, २९५
कार्मणशरीर	०२९
कार्मणवर्गणा	०२८
कालद्रव्य/भेद	०३४, ०३५
कालद्रव्य के भेद और स्थिति	०५९
कीलकसंहनन	१८८
कुब्जकसंस्थान	१८०
केवलदर्शन	१०५
केवलव्यतिरेकी हेतु	६३१
केवलज्ञान	५८५
केवलान्वयी हेतु	६३०
कोडाकोडी	२५२

विषय	प्रश्नाङ्क
क्रमभावी विशेष	६३९
क्रियावतीशक्ति	०५१
क्ष	
क्षपकश्रेणी	५२३
क्षपकश्रेणी के गुणस्थान	५२६
क्षणिक उपादान/कारण-कार्य	३००
क्षय	२६८
क्षयोपशम	२६९
क्षायिकभाव/भेद	३४४, ३४९
क्षायिकसम्यग्दृष्टि की श्रेणियाँ	५२४
क्षायोपशमिकभाव/भेद	३४५, ३५०
क्षीणमोह गुणस्थान/भाव	४८६, ५४९
क्षीणमोहगुणस्थान में उदय	५५१
क्षीणमोहगुणस्थान में बन्ध	५५०
क्षीणमोहगुणस्थान में सत्त्व	५५२
क्षेत्रविपाकीकर्म	२३७
क्षेत्रविपाकी प्रकृतियाँ कौन-कौनसी	२४३
ग	
गति/भेद	३६२, ३६३
गति नामकर्म	१६८
गर्भजन्म	४२९
गर्भज पञ्चेन्द्रिय के १६ भेद	४४०
गन्ध नामकर्म	१९१
गुण/भेद	००२, ००३
गुणस्थान	४८३
गुणस्थानों के निमित्त	४८३
गुणस्थानों के १४ नाम	४८४
गुणस्थानों के नाम के कारण	४८५
गुणहानि/आयाम	२८१, २८२
गोत्र/गोत्र के भेद	२२२, २२३

विषय	प्रश्नाङ्क
घ	
घातियाकर्म/भेद	२३०, २३९
घ्राणेन्द्रिय	३८१
च	
चय	२८९
चय-परिमाण निकालने की रीति	२९०
चक्षुदर्शन	१०२
चक्षुरिन्द्रिय	३८२
चारित्र/भेद	१०७, ११२
चारित्रमोहनीय/भेद	१५६, १५७
चारित्रमोहनीय का बन्ध	१५६
चारित्रमोहनीय सम्बन्धी तीन करण	५२७
चेतना/भेद	०७८, ०७९
ज	
जन्म/जन्म के भेद	४२७
जाति/जाति नामकर्म	१६९, १७०
जीव, अनाहारक कब-कब	४२०
जीवद्रव्य	०१४
जीवद्रव्य कितने और कहाँ?	०६१
जीव का आकार	०६२
जीव के भेद	१३५
जीवत्वगुण/जीवत्वशक्ति	१२१
जीव के अनुजीवीगुण	०७६
जीव के असाधारण भाव	३४२
जीवविपाकी कर्म	२३४
जीवविपाकी प्रकृतियाँ कौन-कौन?	२४५
जीवसमास/अन्य परिभाषा	४३३
जीवसमास के भेद	४३४
जीवों के प्राणों की संख्या	२३७
जैन जागरफी	४७१
ज्योतिष्क देवों का स्थान	४६४
ज्योतिष्क देवों के भेद	४४९

विषय	प्रश्नाङ्क
ज्ञ	
ज्ञानचेतना/भेद	०८२, ०८५
ज्ञान/ज्ञानमार्गणा के भेद	४०७
ज्ञानोपयोग के भेद	३५७
ज्ञानावरणकर्म/भेद	१४३, १४४
ज्ञानावरण के आस्रव	१४३
त	
तर्क	५९३
तिर्यञ्चायु का बन्ध	१६५
तिर्यंच के ८५ भेद	४३५
तीर्थङ्कर का वर्णन	२२१
तीर्थङ्कर नामकर्म/उसका बन्ध	२२१
तैजस-कार्मण शरीरों के स्वामी	०३०
तैजसवर्गणा/तैजसशरीर	०२५
त्रस	३८६
त्रस जीवों का स्थान	४५९
त्रस नामकर्म/अन्य परिभाषा	२०२
द	
दुर्भग नामकर्म	२१४
दर्शन कब होता है?	१०१
दर्शनचेतना/भेद	०८०, ०८४
दर्शनचेतना का प्रादुर्भाव कब	०८४
दर्शनमार्गणा के भेद/दर्शन	४१०
दर्शनमोहनीयकर्म/भेद	१५१, १५२
दर्शनमोहनीय का बन्ध	१५१
दर्शनावरणकर्म/भेद	१४५,१४६
दर्शनावरण के आस्रव	१४५
दर्शनोपयोग के भेद	३५६
दु:स्वर नामकर्म	२१६
देवों के दो भेद/विशेष भेद	४४५, ४४६
देवायु का बन्ध	१६५
देशघाति कर्म	२३३
देशघातिप्रकृति कौन-कौनसी	२४२

विषय	प्रश्नाङ्क
देशचारित्र	११४
देशविरत गुणस्थान/भाव	५०७
देशविरत गुणस्थान में उदय	५०९
देशविरत गुणस्थान में बन्ध	५०८
देशविरत गुणस्थान में सत्त्व	५१०
दृष्टान्त/भेद	६२३, ६२४
द्रव्य/भेद	००१, ०१३
द्रव्यत्वगुण	००९
द्रव्यनिक्षेप	६७१
द्रव्यप्राण के भेद	१२४
द्रव्यबन्ध	३०१
द्रव्यबन्ध का निमित्तकारण	३०४
द्रव्यबन्ध का उपादानकारण	४१५
द्रव्यार्थिकनय/भेद	६५०, ६५२
द्रव्यास्रव/अन्य परिभाषा	३०८
द्रव्यास्रव के भेद	३३४
द्रव्येन्द्रिय/भेद	३६६, ३७८
द्रव्यों के विशेषगुण	०५१
द्रव्यों के प्रदेश	०५८
द्रव्यों में कौन-कौनसी पर्यायें	०४७
द्वितीयोपशमसम्यक्त्व	४९३
द्वितीयोपशमसम्यग्दृष्टि की श्रेणी	५२४
ध	
धर्मद्रव्य	०३१
धर्म तथा अधर्मद्रव्य की विशेषता	०५७
धारणा	०९३
ध्रौव्य	०५०
न	
नरकायु का बन्ध	१६५
नय/भेद	६४५, ६४६
नाना गुणहानि	२८३
नामकर्म/शुभ-अशुभ नामकर्म	१६६
नामकर्म के भेद	१६७

विषय	प्रश्नाङ्क
नामनिक्षेप	६६७
नामनिक्षेप-स्थापनानिक्षेप में भेद	६६९
नारकियों के दो भेद	४४४
नारकियों के विशेष भेद	४५५
नारकी जीवों का स्थान	४५६, ४६२
नाराचसंहनन	१८६
निगमन	६२८
नित्यनिगोद	३९८
निधत्त-निकाचित	२७९
निमित्तकारण	२९९
निर्जरा	४७९
निर्माण नामकर्म	१७३
निर्वृत्ति/भेद	३६७, ३६८
निश्चयनय/भेद	६४७, ६४९
निश्चयकाल	०३६
निषेक	२७०
निषेकहार	२८८
निक्षेप/भेद	६६५, ६६६
नीच गोत्रकर्म/उसका बन्ध	२२५
नैगमनय	६५३
नोकषाय वेदनीय के भेद	१५९
न्यग्रोधपरिमंडल	१७८
प	
पदार्थों को जानने के उपाय	५६१
परघात नामकर्म	१९७
परमाणु	०१७
परोक्षप्रमाण	५८६
परोक्षप्रमाण के भेद	५८७
परोक्ष मतिज्ञान के भेद	०८८
पर्याप्ति नामकर्म	२०४
पर्याप्ति/भेद	२०५, २०६
पर्याय/भेद	०३८, ०३९
पर्यायार्थिकनय/भेद	६५१, ६५६

विषय	प्रश्नाङ्क
पक्ष	६०७
पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च कहाँ-कहाँ	४६१
पापकर्म	२२९
पापप्रकृति कौन-कौनसी	२४७
पारिणामिकभाव/भेद	३४७, ३५२
पारमार्थिक प्रत्यक्ष/भेद	५७८, ५७९
पुण्यकर्म	२२८
पुण्यप्रकृति कौन-कौनसी	२४८
पुण्यास्रव-पापास्रव का कारण	३३८
पुद्‌गलद्रव्य/भेद	०१५, ०१६
पुद्‌गलद्रव्य की स्थिति व संख्या	०६०
पुद्‌गलविपाकी कर्म	२३५
पुद्‌गलविपाकी प्रकृति कौन-कौनसी	२४६
पुरुषार्थ	११८
पूर्ण गुणों की एकता	४८०
प्रकृतिबन्ध/भेद	१४१, १४२
प्रकृति और अनुभागबन्ध में भेद	३०९
प्रकृतिबन्ध में विशेषता	३१०
प्रकृतिबन्ध की अपेक्षा आस्रव-भेद	३१०
प्रतिज्ञा	६२०
प्रतिजीवीगुण/भेद	०६९, ०७८
प्रत्यभिज्ञान/भेद	५८९, ५९०
प्रत्यक्ष/भेद	५७५, ५७६
प्रत्यक्षबाधित	६१५
प्रत्याख्यानावरणकर्म	१६२
प्रत्याख्यानावरण-अविरति से बन्ध	३२९
प्रत्येक नामकर्म	२०८
प्रत्येक वनस्पति/भेद	३९१, ३९३
प्रत्येक गुणहानि का परिमाण	२८७
प्रथमोपशमसम्यक्त्व	४९२
प्रदेश	०५८
प्रदेशत्वगुण	०१२
प्रदेशबन्ध	२६१

विषय	प्रश्नाङ्क
प्रध्वंसाभाव	०७३
प्रमत्तविरत गुणस्थान/भाव	४८६, ५११
प्रमत्तविरत गुणस्थान में उदय	५१३
प्रमत्तविरत गुणस्थान में बन्ध	५१२
प्रमत्तविरत गुणस्थान में सत्त्व	५१४
प्रमाण/अन्य परिभाषा	४७३
प्रमाण के भेद	५७४
प्रमाण का विषय/सामान्य-विशेष	६३५
प्रमाणाभास/भेद	६४०, ६४१
प्रमाद/विवरण	३२१
प्रमाद के भेद	३२२
प्रमाद की प्रधानता से बन्ध	३३०
प्रमेयत्वगुण	०१०
प्रागभाव	०७२
प्राण व उसके भेद	१२२, १२३
ब	
बन्ध/अन्य कथन	०१९, ४९०
बन्ध के भेद	१३९
बन्ध के कारण	१४०
बन्धन नामकर्म	१७४
बन्धयोग्य/कर्मप्रकृतियाँ	१२०, ३३३
बल प्राण के भेद	१२९
बादर	३८८
बादर एकेन्द्रिय जीव कहाँ	४५८
बादर और सूक्ष्म जीव	४००
बाधितविषय हेत्वाभास/भेद	६१३, ६१४
बाह्य उपकरण	३७४
बाह्य क्रिया	१०८
बाह्य निर्वृत्ति	३६९
भ	
भवनवासी देवों के भेद	४४७
भवनवासी तथा व्यन्तरों का स्थान	४६३

विषय	प्रश्नाङ्क
भवविपाकी कर्म	२३६
भवविपाकी प्रकृतियाँ कौन-कौनसी	२४४
भव्यत्वगुण	११९
भव्यमार्गणा के भेद	४१२
भावनिक्षेप	६७१
भावप्राण/भेद	१२५, १२७
भावबन्ध	३०२
भावबन्ध का निमित्तकारण	३०५
भावबन्ध का उपादानकारण	३०६
भावास्रव/अन्य परिभाषा	३०७
भावेन्द्रिय/भेद	३७५, १२८
भाषावर्गणा	०२६
भोगभूमिज जीवों के भेद	४४२
म	
मतिज्ञान/भेद	०८६, ०८७
मतिज्ञान के अन्य प्रकार	०८९
मतिज्ञान के विषयभूत पदार्थों के भेद	०९४
मध्यलोक/विवरण	४७०, ४७१
मन:पर्ययज्ञान	५८३
मनुष्यों का निवास	५६६
मनुष्यों के ९ भेद	४४३
मनुष्यायु का बन्ध	१६५
मनोवर्गणा	०२७
महासत्ता	०८१
मार्गणा/भेद	३६०, ३६१
मिथ्यात्व/अन्य परिभाषा	२५३, ३१२
मिथ्यात्व-भेद/अन्य प्रकार	३१२, ३१३
मिथ्यात्व की प्रधानता से बन्ध	३२६
मिथ्यात्व गुणस्थान /भाव	४८६, ४८७
मिथ्यात्वगुणस्थान में उदय	४८९
मिथ्यात्वगुणस्थान में बन्ध	४८८
मिथ्यात्वगुणस्थान में सत्त्व	४९०

विषय	प्रश्नाङ्क
मिश्र गुणस्थान/भाव	४८६, ४९९
मिश्रगुणस्थान में उदय	५०१
मिश्रगुणस्थान में बन्ध	५००
मिश्रगुणस्थान में सत्त्व	५०२
मुक्तजीव	१३७
मुहूर्त	२५५
मोहनीयकर्म	१४९
मोहनीयकर्म के भेद	१५०
मोक्ष का स्वरूप	४७६, ५६०
मोक्षप्राप्ति का उपाय	४७७
मोक्ष जानेवालों की गति	४२६
य	
यथाख्यातचारित्र	११६
यश:कीर्ति नामकर्म	२१९
योग	११०, ३२४, ४०१
योग के भेद	३२५, ४०२
योग के निमित्त से बन्ध	३३२
र	
रत्नत्रय की पूर्णता युगपत् या क्रम से	४८१
रत्नत्रय में पूर्ण गुणों की एकता	४८२
रस नामकर्म	१९२
रसनेन्द्रिय	३८०
ल	
लब्धि	३७६
लक्षण/अन्य परिभाषा	५६२
लक्षण के भेद	५६३
लक्षणाभास/भेद	५६६, ५६७
लक्ष्य	५६८
लिङ्ग/लिङ्ग के भेद	४३२
लेश्या	३५३
लेश्यामार्गणा के भेद	४११
लोक की रचना/भेद	०५६, ४६७

विषय	प्रश्नाङ्क
लोकाकाश	०५४
लोकाकाश के बराबर जीव	०६३
व	
वज्रनाराचसंहनन	१८५
वज्रर्षभनाराचसंहनन	१८४
वनस्पति के भेद	३९०
वर्ग	२७३
वर्गणा	२७२
वर्ण नामकर्म	१९०
वस्तुत्वगुण	००८
वामनसंस्थान	१८१
व्याप्ति	५९४
विकलत्रय के ९ भेद	४३८
विकलत्रय के स्थान	४६०
विकलपारमार्थिक प्रत्यक्ष/भेद	५८०, ५८१
विग्रहगति/भेद	२३८, ४२१, ४२३
विग्रहगति में कौनसा योग	४२२
विग्रहगति में अनाहारक अवस्था	४२५
विग्रहगतियों का काल	४२४
विपक्ष	६०९
विपरीत मिथ्यात्व	३१५
विपर्यय	६४३
विभाव अर्थपर्याय	०४७
विभाव व्यञ्जनपर्याय	०४३
विरुद्ध हेत्वाभास	६०५
विशेष/भेद	६३६, ६३७
विशेषगुण	००५
विहायोगति नामकर्म	२००
वीर्य	११८
वेद/भेद	४०३, ४०४
वेदनीयकर्म/भेद	१४७, १४८
वेदनीय (मोहनीय) का खुलासा	१५७

विषय	प्रश्नाङ्क
वैक्रियिकशरीर	०२३
वैनयिकमिथ्यात्व	३१८
वैभाविकगुण/किसमें ?	१३०
वैभाविकी क्रिया	१३०
वैमानिक देवों के भेद	४५०
वैमानिक देवों के स्थान	४६५
व्यतिरेक दृष्टान्त	६२६
व्यक्त-अव्यक्त पदार्थों के भेद	०९९
व्यञ्जनपर्याय/भेद	०४०, ०४१
व्यञ्जनावग्रह/विशेष	०९७, ०९८
व्यन्तरों के भेद	४४८
व्यय	०४९
व्यवहारकाल	०३७
व्यवहारनय (द्रव्यार्थिकनय का भेद)	६५५
व्यवहारनय (उपनय)/भेद	६४८, ६६१
व्यवहार देशचारित्र	११४
व्यवहार सकलचारित्र	११५
व्युच्छित्ति	४९६
श	
शब्दनय	६५८
शरीर नामकर्म	१७१
शक्ति का विशेषार्थ	२७५
श्वासोच्छ्वास	२५८
शुभ नामकर्म	२११
शुभ और अशुभ योग	३३९
शुभयोग क्या पापास्रव का कारण ?	३४१
शुभयोग में पापप्रकृतियों का आस्रव ?	३४०
श्रद्धागुण	०९९
श्रुतज्ञान	१००
श्रेणी/भेद	५२०, ५२१
श्रेणी चढ़ने का पात्र	५१९
श्रोत्रेन्द्रिय	३८३

विषय	प्रश्नाङ्क
स	
सकलचारित्र	११५
सकलपारमार्थिक प्रत्यक्ष	५८४
सत्त्व	४९०, ५०६
सदवस्थारूप उपशम	२६७
सद्भूतव्यवहार नय	६६२
सपक्ष	६०८
सप्रतिष्ठित प्रत्येक	३९४
समयप्रबद्ध	२८०
समचतुरस्रसंस्थान	१७७
समभिरूढनय	६५९
समर्थकारण	२९६
समुद्घात	०६५
सम्मूर्च्छनजन्म	४३०
सम्मूर्च्छन के ६९ भेद	४३६
सम्मूर्च्छन पञ्चेन्द्रिय के १८ भेद	४३९
सम्यक्त्व/सम्यक्त्वगुण	४१३, १०६
सम्यक्त्वमार्गणा के भेद	४१४
सम्यक्त्वाचरणचारित्र	११३
सम्यक्-मिथ्यात्व	१५४
सम्यक्प्रकृति	१५५
सम्यग्दर्शन के भेद	१०६
सयोगकेवली गुणस्थान	४८६, ५५३
सयोगकेवली गुणस्थान में उदय	५५५
सयोगकेवली गुणस्थान में बन्ध	५५४
सयोगकेवली गुणस्थान में सत्त्व	५५६
सर्वघातिकर्म/भेद	२३२, २४१
सहकारी सामग्री के भेद	२९८
सहभावी विशेष	६३८
संक्रमण	२७९
संग्रहनय	६५४
संघात नामकर्म	१७५

विषय	प्रश्नाङ्क
संज्वलनकषाय/नोकषाय	१६३
संयम/भेद	४०८, ४०९
संज्ञा/भेद	३५८, ३५९
संज्ञी/संज्ञीमार्गणा के भेद	४१५,४१७
संवर-निर्जरा/उपाय	४७८-४८०
संशय	६४२
संसार में सुख क्यों नहीं होता?	४७४
संसारी जीव	१३६
संस्थान नामकर्म	१७६
संहनन नामकर्म	१८३
सागर	२५३
सात पृथिवियों के नाम	४५६
सातावेदनीय का बन्ध	१४८
सातिशय अप्रमत्तविरत	५१८
सादृश्यप्रत्यभिज्ञान	५९२
साधन/साध्य	५९६, ५९७
साधारण नामकर्म	२०९
साधारण वनस्पति/भेद	३९२, ३९७
साधारण वनस्पति का स्थान	३९६
सामान्यगुण/भेद	००४, ००६
सामान्य-विशेष/भेद	६३५
साम्परायिक आस्रव	३३५
सांशयिक मिथ्यात्व	३१६
सासादन गुणस्थान/भाव	४८६, ४९१
सासादन गुणस्थान में उदय	४९७
सासादन गुणस्थान में बन्ध	४९५
सासादन गुणस्थान में सत्त्व	४९८
सांव्यावहारिक प्रत्यक्ष/विवरण	५७७
सांव्यावहारिक प्रत्यक्ष मतिज्ञान	०८७
सिद्धलोक	४६९
सिद्धसाधन	६१२
सुख	११७
सुभग नामकर्म	२१३
सुस्वर नामकर्म	२१५
सूक्ष्म	३८९
सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवों का स्थान	४५७
सूक्ष्मत्व प्रतिजीवीगुण	१३४
सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान/भाव	४८६, ५४१
सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान में उदय	५४३
सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान में बन्ध	५४२
सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान में सत्त्व	५४४
स्कन्ध/भेद	०१८, ०२०
स्थापनानिक्षेप	६६८
स्थावर	३८७
स्थावर नामकर्म/अन्य परिभाषा	२०३
स्थितिबन्ध/अन्य परिभाषा	२४९
स्थिर और अस्थिर नामकर्म	२१०
स्पर्द्धक	२७१
स्पर्श नामकर्म	१९३
स्पर्शनेन्द्रिय	३७९
स्मृति	५८८
स्वभावअर्थपर्याय	०४६
स्वभावव्यंजनपर्याय	०४२
स्ववचनबाधित	६१८
स्वरूपाचरणचारित्र	११३
स्वर्ग/स्वर्गलोक	४६९
स्वस्थान अप्रमत्तविरत	५१७
स्वातिसंस्थान	१७९
ह	
हुंडकसंस्थान	१८२
हेतु/हेतु के भेद/अन्य प्रकार	६२१, ६२९
हेत्वाभास/भेद	६०२, ६०३

तीर्थधाम मङ्गलायतन
ग्रन्थमाला के सम्माननीय सदस्य

परम संरक्षक –

(1) पण्डित श्री कैलाशचन्द्र पवनकुमार जैन, अलीगढ़; (2) श्रीमती सुशीलादेवी, धर्मपत्नी श्री अजितप्रसाद जैन, दिल्ली; (3) श्रीमती ममता जैन, धर्मपत्नी श्री मुकेश जैन परिवार, अलीगढ़; (4) श्रीमती ताराबेन दाह्यालाल शाह, मुम्बई हस्ते श्री हसमुखभाई शाह, मुम्बई; (5) श्री गिरीश-प्रवीण शाह, यू.एस.ए.; (6) श्री गुणवन्त जे. हिमानी, मुम्बई; (7) श्रीमती कमलादेवी धर्मपत्नी श्री नेमीचन्द पाण्डया, कोलकाता; (8) श्री महेशचन्द्र परिवार, कन्नौज; (9) श्रीमती सरलादेवी जैन मातूश्री आलोककुमार जैन, परिवार, कानपुर; (10)श्री पी. के. जैन, परिवार, रुड़की; (11) श्री चम्पालाल भण्डारी, बंगलौर; (12) श्री महाचन्द जैन चन्दकला जैन सिंघई, भीलवाड़ा; (13) श्रीमती शीतल बी. शाह, लन्दन; (14) श्रीमती बीना जैन धर्मपत्नी श्री राजेन्द्रकुमार जैन, देहरादून; (15) श्री प्रेमचन्द बजाज, कोटा; (16) श्री ऋषभ सुपुत्र श्री जैन बहादुर जैन, स्नेहलता, कानपुर; (17) श्रीमती पुष्पलता जैन धर्मपत्नी श्री अजितकुमार जैन, छिन्दबाड़ा; (18) श्री रमणलाल नेमीचन्द शाह, मुम्बई; (19) श्रीमती अमिता धर्मपत्नी श्री भानेन्द्रकुमार बगड़ा, नैरोबी; (20) श्री अजितजी जैन, बड़ौदरा, गुजरात (21) श्री गंभीरमल प्रकाशचन्द्र जैन, अहमदाबाद; (22) श्री वीरेन्द्र कुमार, त्रिशला देवी, नईदिल्ली; (23) श्री बाबूलाल राजेशकुमार मनोजकुमार पाटौदी, गोहाटी (दिल्ली); (24) जैन सेन्टर ऑफ ग्रेटर फिनिक्स, ऐरिजोना; (25) श्रीमती कोकिलाबेन शाह C/O श्री प्रवीन शाह कल्पना शाह, अमेरिका; (26) श्रीमती रंभाबेन पोपटलाल बोरा चैरिटेबिल ट्रस्ट, मुम्बई। (27) श्री विवेक जैन, इन्दौर। (28) श्रीमती कौशल्यादेवी धर्मपत्नी श्री हरीशचन्द्र जैन, विकासनगर, देहरादून।

संरक्षक –

(1) अहिंसा चेरिटेबिल ट्रस्ट, जयपुर हस्ते दिलीपभाई; (2) श्री प्रकाशचन्द्र जैन छाबड़ा, सूरत; (3) डॉ० सनतकुमार जैन परिवार, सिहोर; (4) श्री कपूरचन्द छाबड़ा परिवार, सूरत; (5) श्री कैलाशचन्द छाबड़ा परिवार, सूरत; (6) श्रीमती त्रिशलादेवी जैन, सूरत; (7) ज्ञायक पारमार्थिक ट्रस्ट, बाँसबाड़ा; (8) श्रीमती मीना जैन धर्मपत्नी श्री केशवदेव जैन, कानपुर; (9) श्री निहालचन्द जैन, धेवरचन्द जैन, जयपुर; (10) श्रीमती कमलप्रभा जैन मातुश्री श्री अशोक बड़जात्या, इन्दौर (11) श्री महावीर जी पाटिल, सांगली, महाराष्ट्र (12) श्री विजेन्द्र कुमार जैन, जैन मैटल कम्पनी, कुमार मैटल कम्पनी, अलीगढ़।

परम सहायक –

(1) पण्डित कैलाशचन्द जैन, परिवार, अलीगढ़; (2) श्री कैलाशचन्द्रजी जैन, परिवार, ठाकुरगंज; (3) श्री अशोककुमार जैन, परिवार, चिलकाना; (4) श्री बोसकुमार जैन, परिवार, चिलकाना; (5) श्री राजीवकुमार जैन, चिलकाना; (6) श्री संजयकुमार जैन, चिलकाना; (7) श्री बलीशकुमार जैन, परिवार, गाजियाबाद; (8) श्री कैलाशचन्द्रजी जैन, परिवार, भीलवाड़ा; (9) श्री दिगम्बर जैन कुन्द कुन्द कहान स्मृति सभागृह ट्रस्ट, आगरा; (10) श्री प्रशान्तभाई दोशी, पुणे; (11) श्री राजेन्द्रभान बारौलिया, आगरा; (12) श्री शान्तिलाल कुसुमलता पाटनी,

छिन्दबाड़ा; (13) श्री रविन्द्रकुमार जैन स्नेहलता जैन, नवी मुम्बई; (14) श्री कपूरचन्द अक्षयकुमार बत्सल, खनियांधाना; (15) श्री एम.पी. जैन चैरिटेबल ट्रस्ट, विवेक विहार, दिल्ली; (16) श्री जीवराज, कैलाश, प्रकाश संचेती, अजमेर; (17) श्रीमती इन्दिराबेन नवीनभाई शाह जोबालिया, मुम्बई; (18) श्री प्रकाशचन्द जैन, सूरत; (19) श्री शीतल गायक, बांसवाड़ा (राज.); (20) श्री महीपाल गायक, बांसवाड़ा (राज.); (21) श्री रूचाम्स फ्रेमिंग, टोरन्टो कनाडा।

सहायक

(1) श्रीमती कान्तीदेवी जैन, धर्मपत्नी श्री मोतीचन्द्र जैन (शहरी), चिलकाना; (2) श्रीमती सीमा सेठी धर्मपत्नी श्री दिलीप सेठी, झालावाड़; (3) श्री शीलचन्द्र जैन 'सर्राफ', परिवार, बीना; (4) श्री दिगम्बर जैन मुमुक्षु मण्डल, आगरा; (5) श्री दिगम्बर जैन मुमुक्षु मण्डल, करेली; (6) श्री उमेशचन्द संजीवकुमार, भोपाल; (7) श्री कन्नूभाई दोशी, परिवार, मुम्बई; (8) श्री खुशालचन्द्र राकेशकुमार सर्राफ, खिमलसा; (9) श्री धनकुमार सुनीलकुमार जैन, सूरत; (10) श्री वीरेश चिरंजीलाल कासलीवाल परिवार, सूरत; (11) श्रीमती स्व० शोभाबेन, धर्मपत्नी स्व० मोतीलाल कीकावत, लूणदा; (12) श्रीमती प्रकाशवती धर्मपत्नी गंभीरचन्द्रजी वैद्य, अलीगंज हस्ते डॉ० योगेश जैन; (13) श्री महेशचन्द जैन, आगरा; (14) श्रीमती रविकान्ता जैन, राधोगढ़; (15) श्री कीर्तिञ्जय अण्णासा गोरे, हिंगोली (फालेगाँव); (16) वन्दना प्रकाशन, अलवर; (17) श्री राजकुमार जैन, रश्मि जैन, उज्जैन; (18) श्री अजित 'अचल' ग्वालियर; (19) श्री कोटडिया चम्पकलाल नाथालाल शाह, अहमदाबाद; (20) श्री सी.एस. जैन, देहरादून; (21) श्री सागरमल माधवलाल सेठी, बुरहानपुर (एम.पी.); (22) श्रीमती शकुन्तलादेवी धर्मपत्नी श्री जवाहरलाल जैन, जयपुर; (23) श्री मनु जैन सुपुत्र श्री अरिदमन जैन, मेरठ; (24) श्री अजितकुमार जैन, एड. सीकर; (25) श्री वीरेन्द्रकुमार पारसकुमार, मनोजकुमार हरसौरा, कोटा; (26) डॉ. रांका जैन, प्रिसिंपल, देहरादून; (27) श्रीमती वर्षा बेन पीयूष शाह, ऐरिजोना अमेरिका; (28) श्री विजय किकावत, बसंत विहार, नई दिल्ली; (29) पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी स्मारक ट्रस्ट, मुम्बई; (30) श्री अजय जैन (सी.ए.), कोटा; (31) श्री चान्दमल हेमन्तकुमार वेद, भीलवाड़ा; (32) श्री सुशीलकुमार जैन समकित पहाड़िया, किशनगढ़; (33) श्री समय गाँधी सुपुत्र श्री रणजीत भाऊ साहेब गाँधी, सोलापुर; (34) श्री कमल बोहरा, कोटा; (35) श्री अनूपकुमार जैन, आगरा; (36) श्रीमती नेहल धर्मपत्नी श्री राजेन्द्रकुमार कोठारी, दाहोद; (37) श्रीमती नीलमबेन रमणीकभाई घड़ियाली, मोरबी; (38) स्व. श्री चान्दमल लुहाड़िया परिवार, बिजौलिया; (39) श्री महावीर प्रसाद जैन, आगरा; (40) श्री सुभाषचन्द गोयल, आगरा; (41) श्री वंशीधर जैन, आगरा; (42) श्रीमती सत्या जैन धर्मपत्नी श्री महेन्द्रकुमार जैन, नई दिल्ली; (43) श्रीमती प्रकाशदेवी सेठी, गोहाटी; (44) श्री धनकुमार जैन, पार्ले पाइन्ट, सूरत; (45) श्री महावीर कुन्दकुन्द दिगम्बर जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट, दुर्ग; (46) सुमतचन्द विनीतकुमार शास्त्री, आगरा; (47) श्री भगवान पारसकुमार जैन, आगरा; (48) स्व. श्री ज्ञानमलजी, भीलवाड़ा (राज०); (49) श्री विमलचन्द पुत्र श्री राजकुमार काला, खरगौन; (50) श्री पुचाम्स परिवार, टोरंटो, कनाडा; (51) श्रीमती सुलोचनादेवी जैन, गोहाटी; (52) श्री प्रभुदयाल जैन, सिलीगुड़ी (आसाम); (53) श्रीमती चंचला जैन, सोलापुर; (54) श्री अम्बुज जैन पुत्र श्री जे. डी. जैन, मलाड़, मुम्बई; (55) श्री अनुभव जैन, जयपुर; (56) श्री कुन्दकुन्द दिगम्बर जैन परमागम ट्रस्ट, इन्दौर; (57) श्री रमेशचन्द सोगानी, कोलकाता; (58) श्री बटुकलाल राघवजी भापाणी, घाटकोपर, मुम्बई।